अर्थशास्त्रीय विश्लेषण

लेखक

महेशचन्द

प्रयाग विश्वविद्यालय

१९६२

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली - नई दिल्ली - जालन्धर

लखनऊ - बम्बई

लेखक की अन्य रचनाएँ

भारत मे औद्योगिक सगठन (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत) (सहयोगी लेखक—श्री विशम्भर नाथ अवस्थी)

अर्थशास्त्र

भारतीय कृषि की आर्थिक समस्याएँ

Co-operative Problems in India

Co-operation in the East & the West (Co-author—Sri D S Kushwaha)

Co-operation in China & Japan

Time Series Analysis

On Elasticity in Economics

Economic Problems in Indian Agriculture Industrial Organisation in India (Co-author—Dr. Sri Dhar Misra)

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

रामनगर नई दिल्ली
फव्वारा दिल्ली
माई हीरा गेट जालन्धर
लाल बाग लखनऊ
लैमिगटन रोड बम्बई

मूल्य ४ रुपये मात्र

गौरीशकर शर्मा, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एव सुपर प्रेस, पहाड गज, नई दिल्ली मे मुद्रित ।

समर्पित

लखनऊ विश्वविद्यालय

के

उन छात्रो

को

जिनके साथ किए पठन-पाठन

की

प्रेरणा-स्वरूप

अधिकाश लेख लिखे गए थे ।

प्राक्कथन

अर्थशास्त्र सबधी हिन्दी साहित्य की कमी को एक सीमा तक पूरी करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक मे चौदह लेख प्रकाशित किये गये है। इस पुस्तक मे स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य को हिन्दी माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

लेखो के संबध मे प्रो० जे० के० मेहता अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय तथा डा० ज्ञानचन्द, भूतपूर्व अर्थशास्त्र परामर्शदाता, भारत सरकार से जो प्रोत्साहन एव सराहना प्राप्त हुई उसके लिए लेखक उनका आभारी है।

यदि एक सीमा तक प्रस्तुत सामग्री एम० ए० की शिक्षा के भारतीय और विदेशी स्तर की तुलना मे ठहर सकी और पूर्वी दर्शन एव दृष्टिकोण मय सिद्ध समझी गई, तो लेखक को अधिक प्रेरणा मिलेगी।

टेक्निकल शब्दो के हिन्दी रूप के सबध मे अभी कोई अन्तिम स्वीकृत व्यवस्था नही है। अत यह स्वाभाविक है कि इस सम्बन्ध मे ऐसे प्रयासो के प्रथम एक दो सस्करणो मे क्रमिक सुधार का स्थान रहेगा।

सभव है कि जहाँ-तहाँ छापे की अशुद्धियाँ रह गई हो, जिन्हे प्रयाग—दिल्ली की दूरी के कारण समय पर दूर करवाने मे लेखक असफल रहा हो। ऐसी अशुद्धियो की सूचना एव अन्य सुधार सम्बन्धी प्रेषित विचारो का पूर्व-कृतज्ञता के साथ स्वागत है।

क्योकि अधिकाश लेख उस समयावधि मे लिखे गए थे जब लेखक लखनऊ विश्वविद्यालय मे "रीडर इन इक्नोमेट्रिक्स" के रूप मे कार्य कर रहा था, पुस्तक अपने तत्कालीन छात्रो को समर्पित करके लेखक ने उनकी स्मृति को संजोया है।

—**लेखक**

लेख-सूची

अध्याय १

अर्थशास्त्र—एक प्राची परिभाषा

किसी भी विषय का क्षेत्र उसकी परिभाषा द्वारा निर्धारित हो उठता है। विषय की परिभाषा क्या रखी जाए, यह इस बात पर निर्भर है कि हम कहाँ तक परिपाटी मानने के पक्ष मे है, कहाँ तक देश, काल एव दशा को देखकर निर्णय करना चाहते है, तथा कहाँ तक सर्वकालीन परिभाषा के अस्तित्व मे विश्वास करते है।

जहाँ तक परिपाटी और परम्परा मानने का प्रश्न है, इनको ठुकराया जा सकता है। परिपाटी एव परम्पराये सत्य नही हो सकती है। यदि हम यह मान भी ले कि कोई पूर्वज अर्थशास्त्री सत्य परिभाषा तक पहुँच भी गया था, तब भी सभवत: उसकी वाणी एव उसके बाद की अनेक वाणियो का परस्पर ऐसा आदान-प्रदान हुआ है कि यह कहना कठिन है कि सत्य क्या है। साधारण भाषा मे हम कह सकते है कि परिपाटी और परम्परा सार्वकालिक नही हैं। इतिहास साक्षी है कि ये बदलती रहती है।

ऐतिहासिक दशानुरूप परिभाषा—देश, काल एव दशा को देखकर परिभाषा निर्धारण अवश्य कुछ महत्त्व रखता है। "जाकी रही भावना जैसी, तिन देखी प्रभु मूरत तैसी" वाली उक्ति के अनुसार ही हम कहेगे कि पश्चिमी जगत मे आर्थिक विचार एव अर्थशास्त्र के क्षेत्र (अतएव परिभाषा) मे परिवर्तन होता रहता है। विनिमयपूर्ण अर्थ-व्यवस्था के द्वार पर खडे योरप एव इगलैड मे व्यापारवाद (Mercantilism) का विकास हुआ। कृषि क्षेत्र मे बसी और बँधी जनसख्या के साथ अकृषि वस्तुओ के विकासार्थ यह आवश्यक था कि नगरीय जनसंख्या बढे, नगर मे स्वर्ण एवं रौप्य मान पर आधारित मुद्रा के प्रसारार्थ अधिक बहुमूल्य धातुएँ देश मे आएँ, तदर्थ विदेशी व्यापार का शेष पक्ष मे हो, और इस ओर राष्ट्रीय प्रयत्न की एकता हेतु सरकार आर्थिक नीति मे हस्तक्षेप करे।

जब अधिक मुद्रा हेतु पत्र मुद्रा ही पर्याप्त समझी जाने लगी, तब विदेशी व्यापार के नियन्त्रण एव राजकीय हस्तक्षेप व्यर्थ प्रतीत हुए। जब उद्योग, वाणिज्य एव कृषि उद्योग का समायोजन हो चला, तब स्वतन्त्रता एव अबाध्यता का युग आया। एडम स्मिथ का काल इसी कारण प्रमुख हो उठा। इस समय जिस श्रम विभाजन की कल्पना की गई थी वह श्रमिको की विभिन्न कुशलता के कारण थी। उस समय श्रमिको की कुशलता का स्थान यन्त्रो को देना सम्भव नही था। बाहुल्यता वाले वर्षों मे श्रमिक भी अपनी कुशलता के भरोसे निजी कार्य सफलतापूर्वक स्थापित कर लेता था। सौ वर्ष के बाद वह बिना सम्पत्ति का हो जायगा, ऐसा वह स्वप्न मे भी नही देख

सकता था। अस्तु, इसी कारण एडम स्मिथ सभी को बराबरी का दर्जा एव बराबरी का अवसर देने की बात कहते थे।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उत्पादन-प्रणाली एव पूँजीवाद ने उत्पादक (मालिक एव नौकरो) की समता के विचार को थोथा सिद्ध कर दिया। तब मनुष्य की समता केवल उपभोक्ता के रूप मे रह गई। समता के पूजको ने अर्थशास्त्र को प्रत्येक उपभोक्ता की अधिकतम सन्तुष्टि सम्बन्धी अध्ययन की ओर मोडा। उपयोगितावाद का युग एव समाज को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों के अध्ययन का युग उसी समय से आरम्भ हुआ। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो ध्येय प्राप्ति हेतु दुर्लभ तथा वैकल्पिक प्रयोग वाले साधनो के उपयोग सम्बन्धी मानवीय क्रियाओ का अध्ययन करता है। इस परिभाषा का बीजारोपण परिस्थिति परिवर्तन के कारण सौ वर्ष पूर्व हो गया था।

उपरोक्त विचारधारा को दृष्टि मे रखकर ही हम कहते है कि अर्थशास्त्र की परिभाषा करते समय देश, काल एव दशा का ध्यान रखने की बात महत्त्व रखती है।

सर्वकालीन परिभाषा—इसके विपरीत सर्वकालीन परिभाषा पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है। यदि हम यह मान ले कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वाला विश्लेषण सही है तो ससार मे जीवनपर्यन्त अर्थ का स्थान बना रहेगा। अत अर्थ की सर्वकालीन परिभाषा को खोजना उपयोगी है। ऐसा करने से आने वाली पीढी एव युगो से अर्थ-सम्बन्धी विचारो का साम्य रहेगा और जीवन के आर्थिक पक्ष का अध्ययन बेपेदी का लोटा न बन पायेगा।

अत परिभाषा सम्बन्धी प्रश्न को हल करने के लिए दो विचारधाराएँ हमारे सम्मुख हैं। प्रथम, समग्र के अधिकतम हित मे व्यक्ति का अधिकतम हित निहित है। जब तक किसी भी व्यक्ति का हित बढाया जा सकता है तब तक समग्र का हित अधिक बढाने की गु जायश रहेगी। द्वितीय, प्रत्येक व्यक्ति का हित अधिकतम होना ही समग्र हित के अधिकतम होने की प्रथम सीढी है। प्रत्येक व्यक्ति के दुखो का दूर होना ही उसके सर्वोत्तम हित का दूसरा रूप है और तदर्थ उसके मस्तिष्क की असतुलन स्थिति को दूर करना चाहिए। कारण, दुख मस्तिष्क के असतुलनवश ही अनुभव होता है। यदि मस्तिष्क स्थिरप्रज्ञ हो तो दुख ही न उठे। अत मस्तिष्क को बाह्य जगत की शक्तियो के प्रभाव से अकिचन बनाना है। यह अकिंचनता—यह आवश्यकता का सदैव स्थिति के अनुरूप समायोजन (यदि लोप[१] नही)—ही अर्थशास्त्र की परिभाषा का सर्वकालीन सत्य पहलू है। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो अकिचन दशा-प्राप्ति सम्बन्धी मानव व्यवहारो का अध्ययन करता है। अकिंचन दशा में बाह्य जगत द्वारा माँगा गया त्याग किया जाता है और उसके द्वारा दिया प्रतिफल स्थिरप्रज्ञ रहकर स्वीकार किया जाता है। उसे भोगकर

१. हमारे विचार में "आवश्यकता लोप" कहना ही उचित होगा क्योंकि जब "जो कुछ मिल गया" उसमें सतुष्टि होती है तो फिर आवश्यकता का अनुभव—कम से कम "मेरी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हुई" यह स्थिनि न आएगी। अन्त करण की व्यवस्था ऐसी किसी भावना को उठने ही न देगी।

ही व्यक्ति सक्षम, प्रफुल्लित एव सुखी रहता है। यही नही, अकिंचन दशाप्राप्त व्यक्ति या समाज की प्रवृत्ति लेने की कम और देने की अधिक रहती है। यदि कही वह सम्पन्न हुआ तो लेने की बात यथासभव कम उठती है।

अकिंचनवाद और वर्तमान स्थिति—वर्तमान समय मे जब भौतिकवाद अधिक प्रभावपूर्ण हो उठा है, जब तत्हेतु नीति एव न्याय उपहास की वस्तु बन रहे है तथा जब मनुष्य बम का निर्मूल्य शिकार समझा जाता है, अकिचनतावादी परिभाषा अधिक सामयिक प्रतीत होती है। इसकी आड लेकर अर्थशास्त्री 'धर्म' तथा न्याय की बात उठा सकता है। इसका पक्ष लेकर अर्थशास्त्री अविकसित देशो के शीघ्रातिशीघ्र विकासार्थ सामूहिक उद्योग एव केन्द्रित आयोजन सम्बन्धी विचारो को मान्यता दे सकता है।

परन्तु जनसाधारण और कतिपय अर्थशास्त्र विशेषज्ञ इस श्रेणी से बाहर नही है—वैयक्तिक अकिंचनता के आदर्श को स्वीकार करने के लिये तैयार नही है। जहाँ दो वक्त पेट भर रोटी नही मिलती है एव जहाँ नगरो की सुविधाएँ स्वप्न मे भी नही मिलती है वहाँ ऐसे लोगो से यह कहना कि "गरीबी वरदान है" (शाप नही) और इसलिये इसकी चिन्ता न करके देशोत्थान हेतु काम करो, अनुचित ही नही, मूर्खता प्रतीत होती है। यही कारण है कि व्यक्ति-उन्मुखी अर्थशास्त्र के शिक्षण का रुख व्यष्टिभावी-विश्लेषण (Micro-analysis) से हटकर समष्टिभावी-विश्लेषण (Macroanalysis) की ओर हो रहा है। इस परिवर्तन की आड मे अर्थशास्त्र का क्षेत्र (अतएव परिभाषा) पुन समग्र (या समाज या राष्ट्र) उन्मुखी बन रही है। राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग, राष्ट्रीय बचत, राष्ट्रीय बेकारी आदि के आधार पर अध्ययन करना तथा राष्ट्रीय कल्याण को अधिकतम करने के लिये केन्द्रित आयोजन के पहलुओ का अध्ययन करना अर्थशास्त्री का कार्य बन रहा है।

समन्वय—ऐतिहासिक स्थिति अनुरूप अर्थशास्त्र की परिभाषा के पक्ष वाले विद्वान् अर्थशास्त्र की नवीन परिभाषा की आवश्यकता समझते है। हमारे दृष्टिकोण से राबिन्स की परिभाषा, अकिंचनताप्रधान परिभाषा एव अधिकतम राष्ट्रीय हित सम्बन्धी परिभाषा मे आधारभूत अन्तर नही है। यदि हम मरणपर्यन्त पुनर्जन्म मे विश्वास करते हैं तो व्यक्तिगत हित का अधिकतम होना इस बात पर निर्भर है कि दूसरो ने अपने हितो को अधिकतम करने की चेष्टा मे हमारे व्यक्ति के दुर्लभ साधनो को कितनी कम मात्रा मे छोडा है। दूसरो के हित अधिकतम हो ऐसी स्थिति मे बचे दुर्लभ साधनो के आधार पर व्यक्ति अपने ध्येय (अधिकतम सन्तुष्टि) को प्राप्त करेगा। यही राबिन्स की परिभाषा का निष्कर्ष है। दूसरे जो माँगते हैं उन्हे वह दे दो तथा वे जो देते है उसे ले लो और फिर भी एक समान (पूर्णरूप से सन्तुष्ट) सतुलित, स्थिरप्रज्ञ अथवा अकिंचन बने रहो, यह अकिंचनताप्रधान परिभाषा का मूल है। प्रो० बोल्डिग का समरसता सिद्धान्त (Theory of Homeostatis) भी इसी स्थिरप्रज्ञता की ओर सकेत करता है। समय के हित मे इस समय स्वार्थ को त्यागकर प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण सामर्थ्य भर काम करे, यह राष्ट्रीय आय-विश्लेषण-कर्त्ताओ का दृष्टिकोण है। साधारण बुद्धि से इन तीनो

दृष्टिकोणो मे कोई अन्तर नही प्रतीत होता है। परन्तु इसके समन्वय के पीछे ऐतिहासिक दशाओ की प्रधानता स्पष्ट झलक रही है। तथापि अकिचनवादी (अथवा निष्काम) कर्म के ध्येय का ऐतिहासिक रूप परिवर्तित होता रहता है। इस विचार को लेकर ही हम अर्थशास्त्र की सर्वकालीन परिभाषा को मुख्य समझते है।

परिभाषा—तब अर्थशास्त्र की सर्वकालीन परिभाषा क्या हो ? हमारे दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो प्राणियो के कल्याणार्थ मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है। 'प्राणियो' के स्थान पर 'मानव' कहना उचित नही है, क्योकि आज का मानव केवल अपने ही नही वरन् पशुओ के कल्याणार्थ एव भूमि की अवनति के विरोधार्थ भी प्रयत्नशील रहता है। पश्चिमी अर्थशास्त्री भले ही इस बात को न माने परन्तु इस बात से डरकर सर्वकालीन सत्य के इस प्राची रूप को सम्मुख रखने के विचार को पीछे ढकेल देना उचित नही प्रतीत होता है।

अर्थशास्त्र एव आर्थिक विकास

अन्त मे यह भी विचारणीय है कि अर्थशास्त्र की उक्त परिभाषा तथा वर्तमान आर्थिक विकास सम्बन्धी साहित्य मे कहाँ तक एकात्म्य है। आर्थिक विकास सिद्धान्त के दो रूप हैं। एक के अन्तर्गत ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाकर विकास को निरतर एक-दिशा मे गतिमान प्रवाह के रूप मे चित्रित करते है। दूसरे के अन्तर्गत वाछनीय आयोजित ध्येय की पूर्ति हेतु करणीय कार्यो और उपायो की व्याख्या की जाती है। दूसरे दृष्टिकोण का तो अर्थशास्त्र की परिभाषा से स्पष्ट तारतम्य है। प्राणी-कल्याण या 'मानव-कल्याण' के अल्पकालीन रूप का निर्णय करके तदनुरूप वाछनीय उपायो की व्याख्या अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे आती ही है। केवल प्रथम (अर्थात् ऐतिहासिक) दृष्टिकोण के अन्तर्गत अनिवार्य आर्थिक-विकास प्रवाह अर्थशास्त्र की परिभाषा के क्षेत्र के बाहर पडता है। जो अनिवार्य है (अर्थात् जो प्रयत्न करने या न करने से बदला नही जा सकता है) उसके रूप एव ढाँचे का ज्ञान प्राप्त करना कोई अर्थ नही रखता है। परन्तु मानव सदैव आशावादी एव अवसरवादी है। वह सोचता है कि भविष्य की कुगति से परिचित होकर कुछ न कुछ प्रयत्न करने की चेष्टा करना वाछनीय है और कौन जाने किस समय बचने के उपाय निकल ही आएँ। इस दृष्टि से प्राणी-(या मानव-) कल्याण के रूप से भिन्न अर्थशास्त्री भावी आर्थिक गति एव अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा कर सकता है। उसका यह कार्य "अर्थशास्त्र के क्षेत्र से परे" नही होगा क्योकि ऐसा अध्ययन भी "कल्याणार्थ साधन-व्याख्या" के अन्तर्गत आता है।

अध्याय २

अर्थशास्त्र में ऐतिहासिक तथा सैद्धान्तिक अध्ययन का स्थान

इतिहास तथा सिद्धान्त की परिभाषा क्या है ? परिभाषा से पूर्व क्या यह पूछा जा सकता है कि ऐतिहासिक तथा सैद्धान्तिक अध्ययन का ध्येय क्या है ? क्या दोनो के ध्येय एक ही है ? हाँ, दोनो मे ही व्यवहार जगत् की घटनाओ का क्रमबद्ध तथा हेतुक विश्लेषण व अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाता है । दोनो में न केवल भूत वरन् भविष्य को समझने का ध्येय निहित है । ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहासकार काल व स्थान क्रम से घटनाओ को उपयुक्त पृष्ठभूमि मे सँजोने और अध्ययन करने की चेष्टा करता है । आखिर प्रत्येक अध्ययनकर्त्ता को कही से—किसी अवस्था या काल से—अध्ययन आरम्भ करना होता है । साठ-सत्तर वर्ष की औसत आयु वाले मानव को पहले बहुत-कुछ दूसरो के कथन और विचारो को अन्धविश्वास सरीखे सीखना पडता है । कालांतर वह उस अर्जित ज्ञान तथा अन्य घटनाओ पर स्वय विचार करता है । अन्त मे उसका अपना व्यक्तित्व नए विश्लेषण, निष्कर्ष तथा विचार पेश करता है । शायद यह कहना अधिक गलत न होगा कि साधारण मानव यह कार्य आत्मसन्तुष्टि और विशेषत आत्मसम्मान वृद्धि के लिए करता है । तब भी वह ऐसा ज्ञान छोड जाना चाहता है जो कि न केवल उसके जीवन-काल मे उपयोगी सिद्ध हो वरन् भावी मानव को भी हेतु-हेतुक सम्बन्ध को समझने तथा भविष्य की घटनाओ को जानकर पहले से होशियार हो जाने मे सहायता करे । होशियार होकर मानव या तो स्वय को कष्टो से बचा लेगा या दूसरो को कष्टो से बचाने मे सहायता करेगा । विशेषज्ञो का ध्येय तो दूसरो की रक्षा करना ही होता है, यद्यपि कभी-कभी विशेषज्ञ आत्म-मान-वृद्धि की भावना मे बह जाते है । अस्तु, इतिहासकार मामूली (ऊपरी) बातो और कारणो से चलकर शनै शनै आधारभूत कारणो तक तथा अन्तरतम घटना-प्रवाह तक पहुँचने का प्रयास करता है । ऐसा अध्ययन करते समय उसका ध्यान अधिकतर भूतकाल तक सीमित रहता है । व्यवहार मे भूतकाल से हमारा तात्पर्य सम्पूर्ण भूतकाल से न होकर उन भूतकालीन तथ्यो से है जिनका ज्ञान इतिहासकार को अपने समय मे रहता है । काल ने बहुत से भूतकालीन तथ्यो को भूगर्भ मे, गहन जगलो और कदराओ तथा सागर के अन्दर छिपा रखा है । एक मानव वर्ग इन छिपे तत्त्वो को खोजने का कार्य अनवरत करता रहता है जिससे भूत-कालीन घटनाओ तथा तथ्यो के लब्धज्ञान का प्रसार किया जा सके । जैसे-जैसे नए भूतकालीन तथ्य सामने आते है, नए इतिहासकार पुराने निष्कर्षों और विचारो मे उपयुक्त परिमार्जन तथा परिवर्द्धन करते है । उनके इन कार्यों के कारण हम यह नही कह सकते कि वे केवल ऊपरी बातों मे फँसे रहते है ।

इतिहासकार के नाम से नही वरन् सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता के नाम से, मानव इतिहास द्वारा प्रस्तुत घटनाओ के विवरण, कुछ अपनी कल्पना तथा कुछ अपनी अन्तर्प्रेरणा के आधार पर घटनाओ के सार्वभौमिक तथा सर्वकालीन कारणो का पता लगाने की चेष्टा करता है। सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता कारण और घटनाओ के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है। ऐसी चेष्टा करते समय उसके प्रयत्न पहले तो मामूली स्पष्ट दीखने वाले साधनो तथा कारणो तक सीमित रहते है। यथा, हम कह सकते है कि किसी वस्तु की माँग उसके मूल्य पर निर्भर है और अर्थ-शास्त्री यह चेष्टा करता है कि वह इस सम्बन्ध को सूत्र रूप से स्पष्ट कर सके यथा,

माँग = ३—२ मूल्य

वह इस प्रकार के अनेको सूत्रो और ढाँचो को (Model) तैयार करता है फिर उन्हे दो प्रकार की कसौटियो पर कसता है—(१) इनमे से कौन भूत-कालीन तथ्यो को सबसे अधिक समझा पाता है तथा (२) इनमे से कौन भविष्य मे अलब्ध तथ्यो को समझा पाता है अर्थात् इन मॉडलो के आधार पर की गई भविष्यवाणियाँ कहाँ तक सत्य उतरती है। ऐसे प्रयत्न करते समय सैद्धान्तिक अर्थ-शास्त्री मानव के ध्येयो और इच्छाओ को किसी मापदड द्वारा नापने की चेष्टा करता है। मूल्य, आय, उपयोगिता आदि अनेको कल्पनाएँ ऐसे अध्ययन की पूर्ति के लिए की गई है। ये कल्पनाएँ कहाँ तक मानव-ध्येय और इच्छाओ की सच्ची प्रतीक है, यह विवादग्रस्त प्रश्न है। परन्तु ऐसी कल्पनाएँ अनिवार्य है।

सैद्धान्तिक मानव (अर्थशास्त्री) यह भी मान लेता है कि वह सभी ध्येयो और इच्छाओं का नामकरण तथा मापन नही कर पाता। अत वह शेष शक्तियो के प्रभाव जानने के लिए दो साधनो का उपयोग करता है—(१) समय (Time) तथा (२) स्वतन्त्र अनिश्चित साधन-शक्ति (Random Variable)। सैद्धान्तिक विशेषज्ञ यह मानते है हम समय की ठीक कल्पना कर सकते है तथा समय अन्य शक्तियो का बहुत कुछ प्रतिनिधित्व कर सकता है। हमने "बहुत कुछ" शब्द जान-बूझकर लिखा है क्योकि समय के अतिरिक्त "स्वतत्र अनिश्चित साधन शक्ति" की भी तो गणना की जाती है। अत अन्तिम प्रतिनिधित्व इस अन्तिम शक्ति के हाथ मे समझना चाहिए। सूत्र या मॉडल बनाकर जिस घटना या प्रभाव को हम समझाने की चेष्टा करते हैं उसका वह अश ही, जो बताये कारणो द्वारा स्पष्ट नही होता, स्वतन्त्र अनिश्चित साधन-शक्ति का रूप है। परन्तु हमने "समय" का जो प्रयोग किया है उसकी कल्पना के सम्बन्ध मे कुछ विवाद उठ सकता है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि समय मे न केवल काल (Time) (') वरन् स्थान (Space) के भी लक्षण हैं। कुछ सज्जन यह भी कह सकते है कि विज्ञान विशेषज्ञ आइस्टाइन के अनुसार समय की कल्पना सापेक्ष है। कुछ व्यवहार जगत् वाले सीधे-सादे व्यक्ति कहेंगे कि समय की कल्पना कुछ भी हो यह वह है जिसे हम घडी के पेण्डुलम की स्थितियो से नापते हैं। समय की कल्पना की भाँति अन्य कल्पनाओ के सम्बन्ध मे भी विवाद उठ सकते हैं। परन्तु गणितात्मक अर्थशास्त्री की दृष्टि मे यह बात महत्त्वपूर्ण है कि वह समय को कारण मानकर कभी-कभी घटनाओ के महत्त्वपूर्ण अशो

को समझा (explain) सकता है। उदाहरणार्थ, जनसख्या की प्रगति तथा भावी रूप के अध्ययन मे अब भी समय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार हम आज के उपभोग को कल की आय से सम्बन्धित करते है तथा आज के विनियोग (Investment) को कल की बचत से।

बुद्धिवाद—सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता (अर्थशास्त्री) इन सूत्रो या मॉडल को बनाते समय तथा उनके आधार पर अध्ययन करते समय यह भी मान लेता है कि मानव तर्कपूर्ण तथा बुद्धिवादी है और वह किसी वस्तु (भौतिक या काल्पनिक) को अधिकतम करने की चेष्टा करता है। मानव बुद्धिवादी तो है परन्तु वह क्षणावेश, रीति, रस्म, रिवाज, अन्तर्प्रेरणा के आधार पर भी कार्य करता है। इस कारण मानव-व्यवहार और जगत् की घटनाओ को समझते-समझाते समय इन शक्तियो का भी ध्यान रखना चाहिए। अतः सैद्धान्तिक ढाँचो मे इनको भी स्थान मिलना चाहिए। यथार्थ मे सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री ऐसा करने की चेष्टा कर भी रहा है। अर्थमिति (Econometrics) नामक अध्ययन के अन्तर्गत जो सूत्र (या मॉडल) लिखे जाते है वे (*i*) मानव-व्यवहार वाले (Behaviouristic), (*ii*) सस्था सम्बन्धी (Institutional) तथा (*iii*) हेतुक (causal) होते है, जहाँ तक क्षणावेश अथवा किसी ऐसी अन्तरप्रेरणा का प्रश्न है, जो बेपेंदी के लोटे-सी है, वह प्रत्येक सूत्र मे "स्वतन्त्र अनिश्चित साधन-शक्ति" के अन्तर्गत निहित रहती है। वह यह मान लेता है कि क्रमबद्ध अन्तरप्रेरणा सूत्र मे प्रतिबिंबित हो उठी है। अत सैद्धान्तिक अर्थशास्त्रीय अध्ययन मे उपर्युक्त उन शक्तियो का भी मापन करने की चेष्टा करते है जिनका उल्लेख मनुष्य अतर्कवादी (Irrational) ठहराने के लिए करते है।

यथार्थ जगत की जटिलता—क्योकि मनुष्य के तार्किक तथा अतार्किक दोनो व्यवहारो को सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री अपने अध्ययन के अन्तर्गत लेने की चेष्टा करता है, उपर्युक्त आलोचना उचित नही जँचती। यह दूसरी बात है कि सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री अभी इतनी सफलता न प्राप्त कर सका है कि वह यथार्थ जगत् के दैनिक रूप को समझा सके। परन्तु ऐसा करना सैद्धान्तिक अध्ययन का ध्येय नही है। इतिहासकार की भाँति सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री भी उन अन्त स्थल की धाराओ को अपने सूत्र मे बाँधने की चेष्टा करता है जिनके कारण दीर्घकालीन ज्वार-भाटे तथा परिवर्तन होते है। उसका दृष्टिकोण तो यह है कि अन्तर के प्रवाहो को समझकर यदि उनको नियन्त्रित किया जाए तो भयकर अथवा भीषण आर्थिक उथल-पुथल नही मचेगी।

दीर्घकालीनसूत्रीय परिवर्तन—कभी-कभी यह कहा जाता है कि सैद्धान्तिक सूत्र सम्बन्धी अध्ययन अभी इतने परिपक्व नही है कि उनकी सहायता से दीर्घकालीन सूत्रीय (मॉडल सम्बन्धी, Structural) परिवर्तनो का पता चल जाए। मान लीजिए एक पुराना सूत्र व्यवहार-जगत् को बाँधे है। उसको एक सीमा तक सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री ने समझ लिया है। यदि उस पुराने सूत्र मे परिवर्तन हो उठता है अर्थात् कोई नवीन शक्ति उसमे आ जाती है अथवा पुरानी शक्तियो का पुनर्गठन हो उठता है तो क्या सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री उसका पता नही लगा सकते? क्यो नहीं! अब उनके सूत्र भावी घटनाओ को न समझा सकेगे। अतः वे अपने पुराने सैद्धान्तिक सूत्र मे

परिवर्तन करने की चेष्टा करेगे। इस प्रकार जिस स्थिति पर पुराने सैद्धान्तिक सूत्र भावी घटनाओ को न समझा सकेंगे वही से नये आर्थिक सूत्रो की खोज आरम्भ हो जायेगी। सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री इस खोज मे अनवरत लगा हुआ है। इसका सैद्धान्तिक अध्ययन इस प्रकार की खोज मे तभी सफल हो सकता है जब हम सूत्रीय परिवर्तनो (Structural changes) के कारणो की कल्पना और व्याख्या करे तथा उन कारणो को एक सूत्र मे बाँधने की चेष्टा करे।

हमारी समझ मे ऐसा प्रयत्न इतिहासकार के सामर्थ्य की बाहर तथा सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता की सामर्थ्य के सम्भवत अन्दर पडता है। यो तो इतिहासकार भी हेतुक सम्बन्धो और व्याख्याओ मे रत है और सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता भी, और अन्तिम विश्लेषण मे दोनो का कार्य एक-सा है। दोनो ही यथार्थ स्थितियो की पृष्ठभूमि पर आगे कार्य करते है यद्यपि सैद्धान्तिक अध्ययनकर्त्ता स्थितियो के सूत्रो की कल्पना मे अधिक रत रहता है। दोनो के कार्यो मे प्रतियोगिता नही वरन् सहयोग की आवश्यकता है। इस बात को अब सभी अर्थशास्त्री मानते है।

सहयोग की बाधाएँ—आर्थिक इतिहास तथा आर्थिक सिद्धान्त के बीच जो सहयोग होना चाहिए उसमे दो बाधाएँ पडती है। प्रथम, आर्थिक सिद्धान्त तथा तत्सम्बन्धी सूत्र तेजी से बदल रहे हैं और वे क्वचित ही इस रूप मे रहते हैं कि इतिहासकार उनका उपयोग कर सके। यदि इतिहासकार स्वय अपने कार्य के अनुरूप सूत्र में परिमार्जन करने की चेष्टा करता है तो वह सिद्धान्तकारो की कडी आलोचना का शिकार बनता है। द्वितीय, सिद्धान्तकार व्यवहार जगत् की घटनाओ का हेतुक विश्लेषण करते समय अपनी पूर्व-मान्यताओ (Pre-suppositions) के वश होकर या तो जटिल या अपूर्ण सूत्र का सृजन करता है। उदाहरणार्थ, इगलैड मे सन् १८७३-१८९६ तक की दीर्घकालीन मन्दी के कारणो का सैद्धान्तिक विश्लेषण समय-समय पर भिन्न रूप से किया गया। शाही कमीशनो ने मूल्यो पर प्रकाश डाला। फिशर तथा कैसेल ने मूल्य तथा स्वर्ण-कोष पर जोर दिया। केन्स ने मूल्य तथा ब्याज की दर पर और विक्सेल ने ब्याज की दर तथा वास्तविक मजदूरी पर। ब्याज की दर तथा लागत दोनो की मन्दी का कारण किसी ने नही बताया। इस प्रकार आर्थिक इतिहास तथा आर्थिक सिद्धान्त में समन्वय नही हो पाता। यह आवश्यक है कि सभी इस ओर प्रयत्नशील हो। जब टिंबरजेन ने व्यवसाय चक्रो (Business-cycles) को साख्यिकीय कसौटी पर कसा था, उनका लार्ड केन्स के साथ आलोचना-प्रत्यालोचना रूपक पत्र-व्यवहार हुआ था और अन्त मे केन्स ने लिखा था कि कोई इतना अधिक स्पष्ट वक्ता, मेहनती तथा मानसिक पक्षपात से रहित नही हो सकता जितना प्रोफेसर टिंबरजेन। जहाँ तक मानव गुणों का प्रश्न है कोई इतना उपयुक्त नही है (जितना कि प्रो० टिंबरजेन) जिसे तथ्यों और आँकडों के आधार पर सैद्धान्तिक सूत्रो को कसौटी पर कसने का कार्य विश्वास के साथ सौंपा जा सके। इतिहास तथा सिद्धान्त के सहयोग के लिए अर्थशास्त्रियो मे ऐसे गुणो की अति आवश्यकता है।

अध्याय ३

अर्थशास्त्र और गणित

क्लासिकल अर्थशास्त्री, मार्शल, केन्स, गणितात्मक अर्थशास्त्र और पुनः क्लासिकल तथा सहज विचारधारा की ओर—सक्षेप मे यह आर्थिक विचारो की प्रगति है। आज गणितात्मक अध्ययन को प्रमुख महत्त्व दिया जाता है यद्यपि यह समझा जाने लगा है कि 'साधारण मति' अधिक महत्त्वपूर्ण है और गणितात्मक अध्ययन केवल अव्यवहारिक परिस्थितियो का विवेचन करते है। नीचे अर्थशास्त्र मे गणित के स्थान के सम्बन्ध मे कुछ विचार प्रकट किए गए है।

अर्थशास्त्र मे गणित का क्या स्थान है ? प्रश्न अजीब-सा है। कारण, साधारणतया अर्थशास्त्री के मत से अर्थशास्त्र मे गणित का स्थान अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण है। अर्थशास्त्री इस सम्बन्ध मे कोई शका उठाते नही दिखाई पडते। तब भी प्रश्न उचित तो है ही, और उसका उत्तर देने के पहले यह सोच लेना चाहिए कि अर्थशास्त्री का कर्त्तव्य क्या है ? वह व्यवहारिक जीवन की क्रियाओ के आर्थिक पहलू का विश्लेषण करता है। वह यह चेष्टा करता है कि व्यवहारिक जीवन के अधिकाश को समझ ले। वह यह भी चेष्टा करता है कि व्यवहारिक जीवन की दीर्घकालीन प्रगति समझ मे आ जाए। परन्तु उससे सम्पूर्ण व्यवहारिक जीवन की विवेचना नही हो पाती। इन मूल तत्त्वो के पारस्परिक सम्बन्ध के ढाँचो (Structures) की विविधता के कारण व्यवहारिक जीवन के जो सैद्धान्तिक रूप मिलते है उनमे महान् अन्तर होते हैं। उनमे और यथार्थ व्यवहारिक रूप मे भी महत्त्वपूर्ण अन्तर हो सकते हैं। अत. ऐसे सैद्धान्तिक रूप व्यवहार-जगत् का सही-सही निरूपण नही करते।

गणित की देन—हम गणितात्मक अध्ययन द्वारा कुछ चुने हुए साधनो या शक्तियो का ही विचार कर पाते है। यदि अधिक शक्तियो का समावेश करने की चेष्टा की जाती है तो गणितात्मक अध्ययन जटिल हो उठता है। ऐसे अध्ययन के निष्कर्ष व्यवहार-जगत् की स्थिति के अनुरूप नही होते—नही हो सकते।

गणितात्मक अध्ययन के अनुयायी और पोषक बन जाने पर यह डर रहता है कि हम जीवन को भूलकर गणित के अचम्भो और कल्पना की उडान मे दौडने लगेगे। मार्शल तो इस बात से इतना डरते थे कि उन्होने एक बार कहा था—"गणित को शीघ्रलिपि स्वरूप, न कि खोज के साधन स्वरूप प्रयोग मे लाओ; तत्पश्चात् तर्क और निष्कर्षो को शब्दो मे व्यक्त करिए। जो कुछ कहिए उसे जीवन से उदाहरण देकर समझाइए। यदि आप ऐसा न कर सके तो जो कुछ लिखा है उसे जला दीजिए। जहाँ शब्दो से काम चल जाए वहाँ गणित का प्रयोग न करिए।"

अर्थगणित की सीमाएँ—अर्थशास्त्र मे गणित का प्रयोग करते समय निम्नाकित गलतियाँ सम्भव है —

(१) अर्थशास्त्रीय चरो को निरन्तर (Continuous) तथा अवकलनीय मान लेते है। यही नही, उनके बीच के सम्बन्ध समीकरण को एकघातीय मान लेते है और कम से कम यह तो मान ही लेते है कि उन चरो का व्यवहार नियमित होगा। इससे गणितीय व्याख्या मे सरलता होती है, यद्यपि ये गुण अर्थशास्त्रीय चरो के सम्बन्ध मे सार्थक नही है। गनीमत है कि ऐसे अध्ययन के निष्कर्ष निकालते समय उपयुक्त सावधानी कर लेते है।

(२) अर्थगणितज्ञ ऐसे चरो को अधिकतम या लघुतम बनाते है जो सही नही है, यथा "मैनेजर की सन्तुष्टि" के स्थान पर "वास्तविक लाभ" को अधिकतम करते हैं अथवा कीमत सम्बन्धित चरो के आधार पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत समाज के सदस्यो की पसन्द तथा नापसन्द का मापन करते है।

इसी प्रकार यद्यपि उद्योग का स्थानीकरण वैयक्तिक विचारो, ऐतिहासिक घटनाओ आदि पर निर्भर होता है, स्थानीकरण निर्धारण हेतु अर्थगणित मे स्थानान्तरण लागत (Transfer costs) को लघुतम कहते है।

(३) सम्बन्ध के स्वरूप (Structure) को और उसे नही तो उसके प्रचलो (parameters) को अपरिवर्तनीय मान लेते है, भले ही यह मान्यता यथार्थ न हो। यथा, समष्टिभावी उपभोगश्रित, जो अमरीकी जीवन से सम्बन्धित माने जाते हैं, बदल रहे है।

(४) अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धित मॉडल मे श्रित और चरो की सख्या तथा स्वरूप ऐसा रखते है कि एक निश्चित हल निकले और वह किसी काल के इतिहास की लगभग पूर्ण व्याख्या कर दे। ऐसे करते समय कई अनुपयुक्त अथवा अनिश्चित चरो को भी स्थान या महत्त्व मिल जाता है। परन्तु अर्थगणितज्ञ यह भूल जाता है कि यह आवश्यक नही है कि भूतकालीन इतिहास के सभी चर भविष्य मे भी क्रियाशील हो, और भूतकाल की ही भाँति।

(५) अर्थगणितज्ञ का ध्यान केवल (या अधिकतर) ऐसे ही चरो की ओर जाता है जो मापे जा सकते है। अन्य महत्त्वपूर्ण चरो की वह बात भी नही सोचता, शायद सोच भी नही सकता, क्योकि उसके अनुसार विज्ञान ही मापशील है। अन्यथा वह माँग-व्याख्या करते समय मूल्य, व्यय-हेतु आय आदि का ही विचार क्यो रखता और बदलती पसन्दो तथा विज्ञापन-आकर्षण को क्यो भूल जाता अथवा, विनियोग निर्धारण पर आविष्कारो, राज्य मे जन विश्वास, निर्णायको के स्वास्थ्य और राजनैतिक परिस्थितियो को भूलकर केवल ब्याज-दर, जनसख्या-वृद्धि-दर और पूँजीगत वस्तुओ के मूल्य का ही क्यो उल्लेख करने की चेष्टा करता।

निस्सन्देह अर्थगणितज्ञ की ओर से यह कहा जा सकता है कि वह इन कमजोरियो से अनभिज्ञ नही है और वह यह चेष्टा भी करता कि अन्य ऐसे चरो को भी गणित के घेरे मे बाँध ले जिन्हे उसके श्रितो मे अभी तक स्थान नही मिला है। यह भी ज्ञातव्य है कि अर्थशास्त्रीय चरो के मापन की कठिनाई तथा श्रित हल

करने की असुविधाओ को ध्यान मे रखकर ही वह जानते हुए भी निरन्तरता, अवकलनीयता आदि को मान लेता है और वह अपने को तभी सफल समझता है जब उसके हल द्वारा हम भविष्य को सही-सही समझ पाते है। परन्तु तिस पर भी यह तो मानना ही पडता है कि अको और गणित की दुनिया मे डूबा रहकर वह कभी-कभी अपने अध्ययन की सीमाओ को भूल जाता है। ऐसी कमजोरी के शिकार अधिकतर सत्तापसन्द अथवा नए अर्थगणितज्ञ ही अधिक हो सकते है।

हम गणितात्मक अध्ययन के खतरे को समझते है परन्तु यह भी सत्य है कि ऐसे अध्ययन के फलस्वरूप ही अनेको पश्चिमी अर्थशास्त्री उन सुझावो को दे सके और उन सिद्धान्तो को सोच सके जिन्हे वे अन्यथा ढूँढ भी न पाते। प्रो० हिक्स, काल्डर, सेमुएलशन, फ्रिश आदि की देन इसी प्रकार की है।

गणितात्मक अध्ययन और जनसाधारण—गणितात्मक अध्ययन के विपक्ष मे यह भी तर्क दिया जा सकता है कि गणित न जानने वाले जनसाधारण, व्यापारी, राजनैतिक नेता आदि गणितात्मक अर्थशास्त्र को न समझ सकेगे। इसी कारण मार्शल ने अपने अध्ययनो को इस प्रकार लिखा है कि पाठक को यह भी न प्रतीत हो कि पाठ्य-विवेचन गणितात्मक अध्ययन पर आधारित है। यह तर्क आधुनिक काल मे अधिक महत्त्वपूर्ण है। साधारण मति के तर्को को विभिन्न प्रकार के नये शब्दों और पदो को गढकर निर्मित बात के रूप मे कहने की प्रवृत्ति बढ रही है जब कि होना यह चाहिए कि अर्थशास्त्रीय ज्ञान 'सहज ज्ञान' के रूप मे उपलब्ध किया जाय।

प्रो० पीगू ने सहज ज्ञान से सम्बन्धित एक आशका की ओर हमारा ध्यान दिलाया था। उनका कथन है कि यह भी सम्भव है कि जनसाधारण यह समझने लगे कि वे किसी समस्या विशेष के सभी पहलुओ को समझते है जब कि सत्य स्थिति इसके विपरीत हो। जनता का ऐसे 'गलत विश्वास' के फेर मे पडना भी अवाछनीय है।

साख्यिकी की आवश्यकता—गणितात्मक अध्ययन के सम्बन्ध मे एक अन्य सकेत ज्ञातव्य है। आधुनिक काल मे यह तो सभी लोग मानने लगे है कि बिना तथ्यो और आँकडो के उपयुक्त अध्ययन और तर्क सम्भव नही है। परन्तु गणित के एक विशेष प्रयोग के बिना सभी समस्याओ सम्बन्धी तथ्य और आँकडे एकत्र नही किए जा सकते। विभिन्न समस्याओ से सम्बन्धित प्रतिनिधि-आँकडे एकत्र करने और उनका अध्ययन करने के लिए साख्यिकी (statistics) का विकास हुआ है। इस नए अध्ययन-साधन की अनुपस्थिति मे प्रो० क्लैपहेम के शब्दो मे अनेको समस्याओ के डिब्बे खाली रहते।

आँकड़ो की बाढ़—इन नए साख्यिकिक आँकडो की बाढ-सी आ गई है। दो, तीन या कभी-कभी अधिक अधिकारी (विभाग या स्रोत) विरोधी और अतुलनात्मक आँकडो का सकलन और प्रकाशन करते है। उदाहरणार्थ, इगलैंड में "भुगतान का शेष" सम्बन्धी और "राष्ट्रीय आय-व्यय" सम्बन्धी आँकडो के बीच विभिन्नता है। इसी प्रकार भारत मे रूई के उत्पादन के आँकडे मिलो मे ओटी हुई रूई के आँकडों से मेल नही खाते। सरकार का एक विभाग कुछ कहता है, दूसरा विभाग कुछ। इसके अतिरिक्त साख्यिकी विशेषज्ञ चाहता है कि उसकी ही तूती

बोले और सभी अर्थशास्त्रीय खोज उसके अन्तर्गत आ जाए ।"

आँकड़ो के फल—शारिरिक आँकडो ही नही वरन् सभी आँकडो के सम्बन्ध मे यह भी कहना अनुचित न होगा कि उन आँकडो का हम को लाभ तभी प्राप्त होता है जब हम बुद्धि और तर्क द्वारा उनका विश्लेषण और अध्ययन करें । यह दोष इतना महत्त्वपूर्ण नही है जितनी यह आशका कि गणित-प्रेमी उन शक्तियो को भूल सकते है जिनको गणित द्वारा मापा नही जा सकता ।

अध्याय ४

अर्थशास्त्र और आँकड़े

अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तो के विकास पर प्रभाव डालने वाली तीन शक्तियो का उल्लेख वाछनीय है—

(अ) आत्म-प्रेरणा से जनित विचार।

(ब) अमात्रिक गुणात्मक (Qualitative) तथ्य जो यथार्थ जगत के अध्ययन से प्राप्त होते है।

(स) मात्रिक (Quantitative) तथ्य अथवा आँकडे।

हम सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक समस्याओ को सुलझाते समय इन तीनो के सम्मिश्रण से लाभ उठाते है, यद्यपि यह विवादास्पद है कि सम्मिश्रण कैसे तथा कहाँ तक उचित है। आजकल मात्रिक तथ्यो पर विशेष जोर डाला जाता है क्योकि उनके आधार पर गणितात्मक अध्ययन सम्भव है और गणितात्मक अध्ययन वैज्ञानिक समझा जाता है।

सही आँकड़ों का महत्त्व—आँकडे सही हो—ऐसा सभी चाहते है यद्यपि आँकडो का अन्तिम महत्त्व उनके सही होने पर ही नही निर्भर करता। उनका महत्त्व इस पर भी निर्भर करता है कि वे किस उद्देश्य से सकलित किये गए है, वे किस प्रकार दूसरे आँकडो के साथ-साथ जोडे गये है, किन गणितात्मक साधनो से और कितनी गणित-क्रियाये उन पर की गई है।

ये सब बातें इसलिये अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योकि आजकल गणितात्मक क्रियाये बहुमूल्य, दुर्लभ तथा अन्य क्षेत्रो मे भी अत्यावश्यक विद्युत्चालित मशीनों पर की जाती हैं और एक-एक अध्ययन मे हफ्तो, महीनो लग जाते है। इतनी मेहनत—इतना सामाजिक त्याग अकारथ चला जाएगा यदि आँकडे सही नही है अथवा यदि अध्ययन का आधार गलत है।

अत. यह अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है कि यह वर्तमान आँकडे कहाँ तक सही हैं।

ऐसे अध्ययन के आधार पर ही हम अधिक उचित रूप से यह निश्चय कर सकते है कि आँकडो के सकलन की भावी योजनाये क्या हो। आँकडो के सही होने की सीमा जानकर हम को यह ज्ञान होता है कि उनके आधार पर किये अध्ययन कहाँ तक ठीक है।

पूर्व विचार तथा नियोजन का महत्त्व—यह ठीक है कि व्यवहार जगत के आँकडो के सही होने से सम्बन्धित विश्लेषण करने के अतिरिक्त निगमन विधि द्वारा यह निश्चित किया जा सकता है कि किसी अध्ययन हेतु कैसे (या कौनसे) आँकड़े

एकत्रित किये जाये । एक सीमा तक यह भी ठीक है कि हम पूर्व विचार के आधार पर ऐसे वर्ग बना सकते है और उन्हे सभी विभागो (या देशो) मे प्रचलित कर सकते जिससे सभी स्रोतो से प्राप्त होने वाले आँकडो का प्रमाणीकरण रहे ।

परन्तु कौनसे ऑकडे एकत्र होकर आयेगे और किस तथ्य सम्बन्धी ऑकडे किसी वर्ग विशेष मे रखे जायँगे यह इस पर निर्भर रहेगा कि सकलनकर्त्ता (अन्वेषक) और तथ्य देने वाले कहाँ तक आदेशो, प्रश्नो, परिभाषाओ और वर्गो को समझे हैं, कहाँ तक वे उत्तर दे सके है और कितनी तत्परता, लगन और क्षमता से उन्होने अपना कर्तव्य निबाहा है ।

केवल पूर्वादेशो और वर्गीकरण पर ही आँकडो का सही होना निर्भर नही है, यद्यपि पूर्वादेश और वर्गीकरण अति महत्त्वपूर्ण है । अत सकलित ऑकडो के साधन सम्बन्धी अध्ययन करना वाछनीय और आवश्यक है ।

समाजशास्त्र की विशेष कठिनाई—अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र मे आँ––ो मे नही होने से सम्बन्धित खोज-बीन कम होती है । ऑकडो पर अर्थशास्त्र के विद्यार्थी और जनता का विश्वास जल्दी जमता है । परन्तु अधिकतर जब उनके अमात्रिक अनुभव ऑकडो से मेल नही खाते अथवा जब भिन्न मत्री बेकारी के भिन्न-भिन्न ऑकडे पेश करते है तो वे आश्चर्य, अविश्वास या किंकर्तव्यविमूढता की स्थिति मे आ जाते हैं । यह सम्भव है कि कृषि विभाग के अधिकारी को ज्ञात हो कि उसके अनुमान और साख्यिकीय विभाग के अनुमान मे क्यो अन्तर है परन्तु फिर भी वह हर एक उल्लिखित ऑकडे के स्रोत का पता नही लगा सकता (या तुरन्त सरलता से नही जान सकता) । फलत वह भी गलतफहमी मे पड जाएगा । अत इस स्थिति को सुधारना अत्यन्त आवश्यक है ।

सामाजिक क्षेत्रो मे, विशेषत॰ समाजशास्त्र मे, आकिक अध्ययन अभी प्रारम्भिक अवस्था मे है । अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे स्थिति कुछ अच्छी है । परन्तु एकत्रित ऑकडो के सही होने की सीमा और गलतियो को प्रगट करने की आदत कम है । छोटे-मोटे अध्ययन और डि॰ फिल॰ की थीसिस को छोडिये, राज्य द्वारा सकलित ऑकडो और उन पर आधारित अध्ययन मे भी गलतियो को स्पष्ट नही किया जाता । लगता तो ऐसा भी है कि ऐसे अवसर कम नही है जब जान-बूझकर अस्पष्टता को अपनाया जाता है ।

गलतियो के प्रकार—गलतियाँ दो प्रकार से पैदा होती हैं—प्रथम, तथ्य को आँकने की गलती; द्वितीय, आँकडो के उनके सही रूप मे न प्रस्तुत करने की गलती । उदाहरणार्थ, यदि कोई सज्जन कहे कि भारत की राष्ट्रीय आय १०,५७,२३,४८१ हजार रुपया है अथवा वे १०,५७२ करोड रुपये भी कहे तो उस पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है । यदि कोई कहे कि पाठक और पाठक के साथियो की औसत वर्तमान आयु २१ ५६७ वर्ष है जबकि कुछ मे जन्म-तिथि और मास के सम्बन्ध मे सन्देह है तो ऐसा कथन कहाँ तक उचित होगा ? कानपुर मिल मजदूरो के रहन-सहन सूचकाक मे ०·१ प्रतिशत का परिवर्तन कहाँ तक सही कहा जा सकता है ?

मौसेरे भाई और मार्ग-प्रदर्शक—सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनो स्रोतो से

आँकडे हमारे सामने आते हैं। गैर-सरकारी सस्थाओ से आँकडे सरकारी विभागो मे भेजे जाते है। सरकारी क्षेत्रो से वित्तीय अनुदान और व्यय गैर-सरकारी सस्थाओ को प्राप्त होते है। यदि सरकारी विभाग गैर-सरकारी आँकडो पर सन्देह करें और विशेष प्रश्न पूछे अथवा यदि गैर-सरकारी सस्थाये सरकारी विभाग के आँकडो की असदिग्धता पर आघात करे तो सम्भव है कि आपस मे असहयोग आरम्भ हो और एक ओर से आँकडे सकलन करने मे सहयोग न मिले तथा दूसरी ओर से वित्तीय लगाम खीच ली जाये। अत. 'तू न मेरी कह, न मैं तेरी'। जनता को दोनो बुद्धू बनाते चलो।

ये अध्ययन, आँकडो का यह सकलन और प्रकाशन विद्वान् अर्थशास्त्रियो और अकशास्त्रियो के योग से चलता है। अत मूलत यह अनिवार्य है कि ये विद्वान् लोग बिना गलतियो की सीमा बताये, आँकडो को प्रस्तुत करना बन्द कर दे। वे ऊपर वालो को समझाये कि आँकडो मे गलतियाँ तो अनिवार्य है। उन्हे बताना और मानना उचित तथा हितकर है।

गलतियो को मानकर जनता का विश्वास प्राप्त करना दुष्कर नही सरल ही बन जाएगा। भविष्य की दृष्टि से भी, जनता का सहयोग इस पर निर्भर रहता है कि उसकी पूर्व-प्रकाशित आँकडो के सम्बन्ध मे क्या धारणा है। नगरो की आर्थिक समीक्षा से सम्बन्धित खोज के बीच अन्वेषको को इस बात का बहुत काफी अनुभव हुआ है। जनता ने कहा है—कुछ भी लिख ले, साहब। यह तो राजसी मेला है। आप लिख ले और अपनी रोजी कमाये। यह सब तो सरकारी खिलवाड है।

वर्तमान समय मे यत्रो के द्वारा साख्यिकीय अनुगणन करना वाछनीय समझा जाता है। बडे-बडे विद्युत्-चालित अनुगणन यन्त्र बनाये जा रहे है। अनुगणन के सैद्धान्तिक आधार भी विस्तृत किए जा रहे है। फलत सही आँकडो को प्राप्त करने एव उनकी त्रुटियाँ जानने का महत्त्व बढता जाता है।

नीचे हम अनुगणन-यत्र और गलतियो के सम्बन्ध पर प्रकाश डालेगे।

अनुगणन-यन्त्र तथा गलतियाँ—अर्थशास्त्री एव आँकडाशास्त्री सदैव व्यवहारिक स्थितियो मे अनुगणन-प्रयास करते है। अर्थशास्त्री अपनी सैद्धान्तिक व्याख्या इस प्रकार गणित-समीकरणो के रूप मे रखते है कि वस्तु-स्थिति को समझा सके। उदाहरणार्थ वालरा (Walras) एव पैरेटो ने सामान्य आर्थिक सतुलन का समीकरणो द्वारा विश्लेषण करने की चेष्टा की। पैरेटो ने तो एक स्थल पर लिखा था कि १०० व्यक्ति एव ७०० वस्तुओ की सतुलन-स्थिति को व्यक्त करने के लिए ७०,६६९ समीकरणो की आवश्यकता पडेगी। अस्तु। ऑकडाशास्त्री एकत्रित आँकडो के आधार पर ऐसे गणितीय (सैद्धान्तिक) सम्बन्ध ढूँढ निकालने की चेष्टा करते है जिससे व्यवहारिक स्थिति की पूर्ण व्याख्या की जा सके। इन प्रयत्नो मे समीकरणो को हल करने की कठिन समस्या आती है। इसका उपाय आधुनिक अनुगणन-यत्र (यथा, विद्युतीय कम्प्युटर) है जिनके कारण अपेक्षाकृत कम व्यय एव कम समय लगता है। फिर भी, क्योकि इन यन्त्रो का व्यय अधिक होता है अत इनका उपयोग बडी मात्रा के अनुगणनो के लिए ही विशेष उपयुक्त है और यह आवश्यक है कि ऑकडे और अनुगणन-आधार की सत्यता अधिक तीव्र हो। यदि सैद्धान्तिक सम्बन्ध गलत है अथवा ऑकड़े सही नही है

तो अनुगणन-व्यय व्यर्थ जाएगा।

अनुगणन के नवीन और गूढ तरीको के आविष्कार के फलस्वरूप इस बात का खतरा अधिक है कि जहाँ आँकडे सही नही है वहाँ भी आकर्षणवश ऐसे उपायो का प्रयोग किया जाए। उदाहरणार्थ, बहुधा काल-सारिणियो (Time Series) के आँकडे सन्देहात्मक होते है और यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि उनमे ऋतु-चक्र (Seasonal Cycles) उपस्थित है। ऐसी स्थिति मे गूढ तरीको द्वारा काल-सारिणी मे से ऋतु-चक्राश (Seasonal Cycle-component) का पृथक्करण समय और साधन को बरबाद करने के सदृश है। ऐसी स्थिति मे यह कही अच्छा होगा कि आधारभूत आँकडो को सुधारा जाए।

मॉडल स्वरूप

आगत-निर्गत विश्लेषण, ऐकिक आयोजन, अन्तर-उद्योग सम्बन्ध आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिकतर मैट्रिक्स-व्यस्तन (Matrix inversion) करना पडता है। तत्हेतु यथार्थ जगत की स्थिति को विशेष समीकरण-सम्बन्ध द्वारा निर्देशित करते है। यथा, हम कह सकते है कि चीनी उत्पादन की मात्रा का अन्य उद्योगो के उत्पादन से निम्नाकित सम्बन्ध है।

उत्पादन = अ लोहा + ब गन्ना + स.रसायन पदार्थ

अथवा, उ = अ ल + ब.ग + स.र,

यहाँ उ = चीनी की मात्रा ल = लोहे की मात्रा, ग = गन्ना की मात्रा तथा र = रसायन पदार्थ की मात्रा। कोई अन्य व्यक्ति कह सकता है कि निम्नलिखित सम्बन्ध भी उपयुक्त है —

$$उ = अ\, ल^{2} + ब\, ग + स\sqrt{र}$$

$$उ = अ.ल + ब\, ग^{1.4} + स\; र$$

$$उ = अ\, ल^{2}\, ग\, \sqrt{र}$$

ये चीनी उत्पादन के मॉडल हुए। उनके सम्बन्ध मे गलती होने से सभी अनुगणन-व्यय एव समय व्यर्थ जाएगा। कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि ऐसे मॉडल बहुत सी बातो का ध्यान छोडकर सरलता एव आदर्श स्थिति के दृष्टिकोण से लिखे जाएँगे और इसी कारण ऐसे मॉडल मे त्रुटि का होना अनिवार्य है।

आँकड़ों की त्रुटियाँ—यदि मॉडल को सही मान ले अर्थात् यह मान ले कि कोई भी कारण-शक्ति (Causal Factor) छूटा नही है तब भी ल, ग, र आदि की मात्राओ का ज्ञान खोज अथवा एकत्रित आँकडो के आधार पर करना ही पडेगा। अन्यथा समीकरण के गुणको (अ, ब तथा स) के हल नही निकल पायेगे। उक्त आँकडो को एकत्र करने की त्रुटियाँ हमारे अनुगणन की वाछनीयता मे बाधक सिद्ध होगी।

अनुगणन-यन्त्रो का उपयोग करने के लिए निर्धारित मॉडल को ऐकिक स्तरीय सम्बन्ध (Linear Form) के रूप मे रखना पडता है। जहाँ मॉडल मे अभिसारी को (Convergent) क्रिया निहित होती है उसको किसी तल (Level) पर इस प्रकार अवरुद्ध करना पडता है कि सन्निकृष्ट हल सन्तोषजनक कहे जा सके। अन्य शब्दो मे अनुगणन विधि की विशेषता के कारण जो सन्निकर्षण (Appropriations) करने पडते

है वे भी त्रुटि के बायस बनते है। जहाँ इनकी सख्या कतिपय होती है वहाँ इस त्रुटि का महत्त्व सरलता से समझ मे आता है। स्पष्टतया एक सरल अर्थशास्त्रीय सम्बन्ध जटिल अर्थशास्त्रीय स्थिति का प्रतिनिधित्व नही कर सकता है।

कभी-कभी आशिक अवक समीकरणो (Partial Differential Equations) को आशिक अन्तर-समीकरणो (Partial Difference Equations) के रूप मे रखते है। ऐसी स्थिति मे यहाँ खोज करना अति आवश्यक हो उठता है कि आँकडो की त्रुटि के कारण मॉडलीय समीकरण नवीन रूप मे भी कहाँ तक सही या स्थायी बने रहेगे। याद रहे कि आँकडो की त्रुटि के कारण प्रारम्भिक मॉडल के स्थायित्व की खोज करना ही होगा। परन्तु यदि त्रुटि का उक्त मॉडल पर प्रभाव न पडे, तब भी यह पता लगाना पडेगा कि कही नए (यथा, आशिक अन्तर) समीकरण के रूप मे स्थिरता (Stability) भग्न तो नही होती। ऐकिक आयोजन मे यह अति महत्त्वपूर्ण है।

यन्त्र की सीमित सामर्थ्य—अन्त मे यन्त्र यन्त्र ही है। उसके सचालन-क्षमता की सीमाएँ है। चलते-चलते कोई पुरजा उचित से कम या अधिक चला तो अनुगणन निष्कर्ष बदल जाएँगे। इन यन्त्रो की अनुगणन त्रुटियो के दो रूप है। प्रथम, गणितीय-स्थिति के अनुरूप यन्त्र के भागो का निर्माण करने मे त्रुटि रह सकती है। द्वितीय, कुछ यन्त्रो (यथा, डिजीटल यन्त्र) मे अनुगणन होते समय कुछ अको को अगली दहाई तक ही लेते है। यथा, २१५ × ३२ का गुणनफल निकालते समय यह सम्भव है कि मशीन २२० × ३० का गुणनफल (अर्थात्, ६,६००) दे। ऐसी स्थिति मे इस निष्कर्ष एव सत्य निष्कर्ष मे ८० का अन्तर हो जायगा। यदि ऐसा सन्निकर्षण कतिपय बार यन्त्र के अन्दर स्वमेव हो तो अन्तिम निष्कर्ष की उपादेयता समझते समय तत्सम्बन्धी त्रुटि का महत्त्व बढ जाएगा। आगत-निर्गत विश्लेषण मे (जहाँ भी दस से अधिक क्षैतिज स्तर (Row) एव कालम वाले मैट्रिक्स उलटने पडते है) उक्त त्रुटि अवश्य उठेगी। यह तो मानी हुई बात है कि निकट भविष्य मे आगत-निरागत सम्बन्धी मैट्रिक्स सौ दो सौ स्तर वाले होगे।

अर्थशास्त्र एव साख्यिकी के विद्यार्थी को यह जानना आवश्यक है कि किन्ही भी आँकडो पर आधारित समीकरणो के सही हल महत्त्वपूर्ण होते है। कभी-कभी आँकडो की तनिक-सी गलती हल पर कितना भयावह प्रभाव डाल सकती है इसका एक उदाहरण नीचे के दो समीकरणो के हल से स्पष्ट है :—

य — ल = २

य — १·००१ ल = १

∴ य = १००२, ल = १०००

परन्तु यदि दूसरे समीकरण मे ल का गुणक १·००५ हो जाए अर्थात्

य — १·००५ ल = १

तो हल निम्नाकित होगा —

य = २०२, ल = २००

प्रोफेसर वीनर (Wiener) ने सत्य ही लिखा है कि आधुनिक जटिल अनु-

गणन-यन्त्रो की त्रुटियो से बचने के लिए कम नही वरन् अधिक विद्वान् गणित-विशेषज्ञो की आवश्यकता है। यथार्थ मे सैद्धान्तिक विश्लेषण तथा व्यवहारिक प्रयोग (Applications) जितने व्याप्त (Comprehensive) होते जाते है, उतना ही अनुगणन-रीति तथा निष्कर्ष का अर्थ सदेहात्मक बनता है और शोधकार्य करने वाले की निरन्तर खोजबीन अधिक आवश्यक हो उठती है। चाल-क्रीडा, आगत-निरागत एव ऐकिक आयोजन सम्बन्धी अर्थशास्त्रीय समस्याओ के सम्बन्ध मे उपर्युक्त विचार अति लागू होते हैं क्योकि उनमे यान्त्रिक-अनुगणन अनिवार्य है।

अध्याय ५

अर्थमिति

एडम स्मिथ, रिकार्डो एव मार्शल भी आर्थिक मॉडल की बात सोचते थे। परन्तु उनके विचार अधिकाशत गुणात्मक थे तथा वैयक्तिक एव सामाजिक हित सम्बन्धी सिद्धान्तो मे कोई विशेष अन्तर नही माना जाता था। कान्तातर पैरेटो, वालरा, वीज़र, कूर्नो, एज़वर्थ तथा बोले ने अर्थशास्त्र की गणितात्मक (मात्रिक) व्याख्या की। गणितात्मक अर्थशास्त्र के अतर्गत विशिष्ट उपपत्तियो एव परिकल्पनाओ के आधार पर गणितात्मक सम्बन्ध लिखे जाते है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उदाहरणार्थ, हम कहते है कि यदि कुल उत्पादन लागत तथा बाजार-मूल्य समीकरण निम्नाकित हो तो अधिकतम लाभ के ध्येय को मानकर हम कह सकते हैं कि उत्पादन क्या होगा :—

$$\text{कुल लागत} = \text{अ}\ \text{य}^{2} + \text{ब}\ \text{य} + \text{स}$$

$$\text{मूल्य} = -\ \text{क}\ \text{य} + \text{ख}$$

यहाँ 'य' उत्पादन है तथा अ, ब, स, क, ख गुणक हैं। अत

$$\text{य} = \frac{\text{ख} - \text{ब}}{२\ (\text{अ} + \text{क})}$$

किसी भी उत्पादन अथवा उद्योग मे जहाँ ये मान्यताएँ सही होगी, उत्पादन उपर्युक्त समीकरण द्वारा जाना जा सकता है।

इसी प्रकार उत्पादन एव उत्पादन साधनो के सम्बन्ध के बारे मे गणितात्मक अर्थशास्त्र के अतर्गत हम कहते हैं कि यदि

$$\text{य} = \text{अ}.\text{प}^{\text{ब}}\ \text{श्र}^{(१-\text{ब})}$$

जहाँ य=उत्पादन, प=पूंजी तथा श्र=श्रम और अ एवं ब गुणक हैं, तो

$$\text{कुल लागत} = \text{म}_{१}\ \text{प} + \text{म}_{२}\ \text{श्र}$$

जहाँ $\text{म}_{१}$=पूंजी का मूल्य तथा $\text{म}_{२}$=श्रम का मूल्य अर्थात् मजदूरी है। निम्नतम लागत के आधार पर गणितात्मक अर्थशास्त्री यह निष्कर्ष निकालता है कि यदि प्रत्येक उत्पादन के साधन को सीमान्त उत्पादकता के बराबर मूल्य दिया जाए तो सारा उत्पादन, लागत चुकाने मे खर्च हो जाएगा —

$$\text{म}_{१} = \text{पूंजी की सीमान्त उत्पादकना} = \frac{\text{ब}\ \text{य}}{\text{प}}$$

$$\text{म}_{२} = \text{श्रम की सीमान्त उत्पादकता} = \frac{(१-\text{ब})\ \text{य}}{\text{म}}$$

$$\therefore \text{कुल लागत} = \text{म}_{१}\ \text{प} + \text{म}_{२}\ \text{श्र} = \text{ब}\ \text{य} + (१-\text{ब})\ \text{य} = \text{य}$$

कभी-कभी तो गणितात्मक अर्थशास्त्री यह भी नही करता था। वह केवल गणितात्मक सम्बन्ध लिखकर यह बतला देता था कि "अज्ञात चरो" की जितनी सख्या है उतने ही समीकरण भी है। अत यदि व्यवहार मे आवश्यकता हो तो समीकरण हल किए जा सकते है।

अर्थशास्त्री, और कालान्तर गणितात्मक अर्थशास्त्री का ध्येय सार्वभौमिक तथा सर्वकालीन अर्थशास्त्रीय सत्य को खोज निकालना था। वे अपनी व्याख्या को ऐसा रूप देना चाहते थे कि वास्तविक घटनाओ को भी समझाया जा सके। यथार्थता की भिन्नता के कारण 'सत्य' एव "यथार्थ जगत की व्याख्या" मे तारतम्य नही बैठ पाता था। ऐसी परिस्थिति मे साख्यिकी-विशेषज्ञो ने व्यवहारिक कदम उठाए। उपलब्ध (एकत्रित) आँकडो के आधार पर उन्होने अर्थशास्त्रीय सम्बन्धो के रूप (अर्थात् समीकरण) एव उनके गुणको का निर्णय करने का प्रयत्न आरम्भ किया। हेनरी मूर (Henry L. Moore) ने निम्नतम वर्ग पद्धति (Least Square Method) द्वारा श्रम की माँग रेखा निर्धारित करने की चेष्टा की। डगलस (Paul H Douglas) तथा कॉब (C W Cobb) ने विशेष उत्पादन फक्शन (Production Function) मानकर उत्पादन एव वितरण की सीमात सिद्धान्तो (Marginal Theories) की जॉच आरम्भ की। हेनरी शूल्ज (Henry Schultz) ने मास एव चीनी की माँग सम्बन्धी समीकरण निकाले। इससे पहले फिशर (Irving Fisher) ने द्रव्य की क्रय-शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तो को आँकडो के आधार पर बल प्रदान करने की चेष्टा की थी।

अमरीका मे डेविस (Harold T Davis) तथा चार्ल्स रूस (Charles F Roos) ने कतिपय साख्यिकीय सम्बन्धो को स्थापित किया। यूरोप मे रैग्नर फ्रिश (Ragnar Frisch) तथा टिन्बरजेन (Jan Tinbergen) ने क्रमश. सीमात उपयोगिता मापन तथा व्यापार-चक्र सिद्धान्तो की आँकडो के आधारपर समीक्षा करके एक नवीन सज्ञायुक्त अर्थशास्त्रीय विश्लेषण की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इस विश्लेषण-पद्धति का नाम अर्थमिति (Econometrics) पड़ा।

सन् १६३० मे अर्थमिति समिति (Econometric Society) अमरीका मे स्थापित की गई तथा सन् १६३३ मे इक्नोमेट्रिका शीर्षक त्रैमासिक पत्र निकलना आरम्भ हुआ। तब से अर्थमिति का विकास निरतर हो रहा है। साधारणतया कोई नवीन विश्लेषण पद्धति निकलने पर उसका व्यवहारिक उपयोग अधिक होने लगता है और उस पद्धति के सैद्धान्तिक पहलुओ को सुधारने का कार्य धीमा पड जाता है। परन्तु अर्थमिति विकास के दूसरे चरण मे भी शोधको ने अधिक घ्यान सैद्धान्तिक पक्ष पर ही दिया है। किसी व्यावहारिक समस्या का अर्थमितीय विश्लेषण करते समय सिद्धान्त परिमार्जन तथा परिवर्द्धन ही अधिक श्रेयस्कर समझा गया।

अर्थमितीय अध्ययन अथवा अर्थशास्त्र में साख्यिकी के प्रयोग करने वालो मे यह प्रवृत्ति प्रकट हो सकती थी कि वे अर्थशास्त्री को सारी जिम्मेदारियो से मुक्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, साख्यिकिज्ञ कह सकता था कि वह यथार्थ जगत के आंकडों के आधार पर यह निर्णय कर लेगा कि—

(१) उत्पादन तथा उत्पादन साधनो के सम्बन्ध का क्या रूप है—

(i) उत्पादन = अ + ब प + स प^2 + क श्र + ख श्र^2

(ii) उत्पादन = अ प^{ब} श्र$^{(१-ब)}$

(iii) उत्पादन = अ पूँजी + ब श्रम + स प्राविधि।

(२) उत्पादन सम्बन्ध मे किन साधनो को स्थान दिया जाए ?

(३) उत्पादन सम्बन्ध के गुणक—(अ, ब, स, आदि) निर्णय करने की कसौटी क्या हो ?

(४) कौनसा सम्बन्ध सर्वोत्तम है ?

(५) सम्बन्ध के आधार पर निर्णीत गुणक—मान (Value of coefficients) का परास (Range) या विचलन क्या होगा ?

(६) सम्बन्ध के आधार पर किये गए किसी भावी मान (Forecasted Value) का विचलन (Variation or deviation) क्या होगा ?

(७) क्या कालातर (After some time) उत्पादन-सम्बन्ध (समीकरण) मे परिवर्तन करना वाछनीय है ?

परन्तु साख्यिकिज्ञ और अर्थमितिज्ञ ने यह गलती नही की। वे समझते है कि निगमन विधि (Deductive Method) के बिना आगमन-विधि पूर्णतया सत्य को प्रकाश मे लाने की क्षमता नही रखती है। उत्पादन समीकरण के रूप के सम्बन्ध मे निगमन विधि अत कल्पना (imagination) की शरण लेनी ही पडेगी। विज्ञान मे भी कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्पना एव अनुगणन-सुविधा को ध्यान मे रख कर समय समय पर अर्थमितिज्ञो ने उपरोक्त सातो प्रकार के प्रयत्न किये है। तथापि यह सत्य है कि अर्थमितिज्ञ अर्थशास्त्री का सहारा ढूँढता है। अर्थशास्त्री ही अर्थशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तो के बारे मे भली भाँति सोच सकता है। सिद्धान्तो तक पहुँचने के लिये उसकी कल्पना ही सार्थक होती है। अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तो को व्यवहारिक मात्रिक परिधान पहिराने के लिये अर्थमितिज्ञ सिद्धान्त के ऐसे आर्थिक मॉडल बनाता है कि समीकरण की अचर राशियो (Constants) का अनुगणन किया जा सके। तत्पश्चात साख्यिकीय सिद्धान्तो की सहायता से अचर राशियो का मान निकालते है। इस प्रकार अर्थमितिज्ञ अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तो की सत्यता जाँचने मे सहायक होता है। निस्सदेह अर्थमितीय शोधकार्य के कारण प्रवैगिक तथा स्थैतिक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध अधिक दृढ बना है। स्थैतिक दशा प्रवैगिक स्थिति की अन्तिम दशा बन जाती है। तथापि अर्थमितिज्ञ यह मानता है कि सामाजिक व्यवहार (Social Behaviour) अति जटिल है और कुछ (सीमित) चरो के आधार पर बनाए सिद्धात तथा मॉडल[1] मे उक्त व्यवहार को पूर्णतया नही समेटा जा सकता है। अत अर्थमितिज्ञ प्रत्येक समीकरण मे एक विभ्रम राशि (Error Term) रख देते हैं। पीछे एक गणितात्मक सम्बन्ध का उल्लेख आया था यथार्थतया वह भी सही नही है।[2]

मूल्य = —अ माँग + ब

अर्थमितिज्ञ इसके स्थान पर लिखेगा—

1 Incomplete theory. 2 Imperfect specification

मूल्य = —अ माँग + ब + u

'u' विभ्रम राशि है।

इसके अतिरिक्त व्यवहार मे माँग तथा मूल्य के आँकडे सही नही होते है।[1] इस कारण भी अनुगणन मे विभ्रम का उदय होता है।

अर्थमिति ऐतिहासिक अध्ययन का एक ढग है। अर्थशास्त्र मे नियत्रित प्रयोग (Controlled Experiments) तो हो नही सकते है। सामाजिक व्यवहार परिवर्तनशील है। केवल व्यवहार सम्बन्धी ऐतिहासिक (भूतकालीन) तथ्य ही मिलते है और इन्ही के आधार पर अर्थमितिज्ञ को ऐसे कथन देते रहते है जो भविष्य मे सत्य उतरे। भविष्यवाणियाँ न भी करनी हो, तब भी वे अर्थमितीय विश्लेषण द्वारा भूतकालीन घटनाओ के कारण और गति पर मनोहर प्रकाश डाल सकते है।

समीकरण चुनाव (Identification)

पीछे हम जिन सात समस्याओ का उल्लेख कर आए है उन पर विशेष प्रकाश डालने से अर्थमितिज्ञ की अध्ययन-प्रणाली अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

साधारणतया कल्पना के आधार पर आर्थिक सिद्धान्तो का उदय होता है। और इन सिद्धान्तो के फलस्वरूप कई पूर्व-सिद्धान्तो (Hypotheses) का उदय होता है। अर्थशास्त्री कहता है कि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर है। परन्तु हम कह सकते हैं कि उत्पादन (अत उत्पादकता) पूँजी, कच्चे माल तथा श्रम की मात्रा पर निर्भर है और यदि विभ्रम राशि (u) जोड दे तो,

उत्पादन = f (पूँजी, कच्चा माल, श्रम, u)

अब यह प्रश्न उठता है कि दाहिनी ओर के फक्शन का क्या रूप हो।

दो सम्भव रूप नीचे दिये जाते हैं—

(१) उत्पादन = अ पूंजी + ब कच्चा माल + स श्रम + u

(२) $\text{उत्पादन} = \text{अ} + \text{ब}_1 \text{ पूँजी} + \text{स}_1 \text{ कच्चा माल} + \text{द}_1 \text{ श्रम}$
$+ \text{ब}_2 \text{ पूँजी}^2 + \text{स}_2 \text{ कच्चा माल}^2 + \text{द}_2 \text{ श्रम}^2$
$+ \text{ब}_3 \text{ पूंजी कच्चा माल} + \text{स}_3 \text{ कच्चा माल.श्रम}$
$+ \text{द}_3 \text{ श्रम. पूँजी} + u$

(३) $\text{उत्पादन} = \text{अ}. (\text{पूँजी})^{\text{ब}} . (\text{कच्चा माल})^{\text{स}} (\text{श्रम})^{\text{द}} \; u$

इनमे से कौनसा सम्बन्ध चुना जाय इसका निर्णय करने के बाद कभी-कभी कुछ अचर राशियो की सख्या कम की जा सकती है। उदाहरणार्थ, मान लीजिये मशीन (अर्थात् पूंजी) से आठ घटे काम लिया जाय और इतनी देर मे एक निश्चित अनुपात मे कच्चा माल खर्च हो अर्थात् कच्चा माल = ब′ पूँजी तो इसकी सहायता से उत्पादन समीकरण को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है —

(१) उत्पादन = (अ + ब ब′) पूँजी + द श्रम + u

(२) $\text{उत्पादन} = \text{अ} + (\text{ब}_1 + \text{स}_1 \text{ब}') \text{ पूँजी} + \text{द}_1 \text{ श्रम}$
$+ (\text{ब}_2 + \text{स}_2 \text{ब}' + \text{ब}_3 \text{ब}') \text{ पूँजी}^2 + \text{द}_2 \text{ श्रम}^2$
$+ (\text{द}_3 + \text{स}_3 \text{ब}') \text{ पूँजी श्रम} + u$

1 Errors of measurement.

(३) उत्पादन $=$ अ ब$'^{स}$ पूँजी $^{(ब+स)}$ श्रम.^{द} u

यदि हम दूसरे समीकरण को चुने तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता का समीकरण निम्नांकित होगा—

उत्पादकता $=$ द$_1$ $+$ २ द$_2$ श्रम $+$ (द$_3$ $+$ स$_3$ ब$'$) पूँजी, और क्योंकि वास्तविक मजदूरी $=$ मजदूरी $\div$ मूल्य स्तर।

अत अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार

$$द_1 + २द_2 \; श्रम + (द_3 + स_3 \; ब') \; पूँजी = \frac{मजदूरी}{मूल्य} + v$$

यहाँ v एक विभ्रम राशि है।

इस प्रकार अर्थमितिज्ञ के अन्तिम सम्बन्ध-समीकरण के कम से कम दो आधार हुए—

(i) प्राविधिक ज्ञान जिनसे प्राविधिक-समीकरण मिलते हैं, यथा, कच्चा माल $=$ ब$'$ पूँजी।

ब (ii) अर्थशास्त्रीय सैद्धान्तिक ज्ञान जिसके आधार पर आचरणीय समीकरण (Behaviour Equation) लिखे जाते हैं। यथा,

(१) सीमान्त आय $=$ सीमान्त लागत

(२) उत्पादकता $=$ वास्तविक मजदूरी

इनके अतिरिक्त दो अन्य प्रकार के समीकरण होते है —

(iii) **सांस्थिक समीकरण**

(iv) **पारिभाषिक समीकरण**

सास्थिक समीकरण का आधार वैधानिक, सामाजिक अथवा अन्य सस्थाजनक मान्यताएँ एव नियम होते है। उदाहरणार्थ, यदि भारत सरकार कह दे कि मजदूरी दो रुपए प्रतिदिन से कम नही हो सकती तो एक नया सम्बन्ध स्थापित होगा—

$$मजदूरी \not< २$$

पारिभाषिक समीकरण केवल परिभाषाओ के कारण लिखे जाते है। उदाहरणार्थ, हम लिखते है कि

$$बचत = विनियोग$$

यदि परिभाषा के अनुसार बचत आय का वह अंश है, जिसका उपभोग नही किया गया।

किसी अर्थ-व्यवस्था का चित्रण करने के लिए निम्नांकित समीकरण लिखे जा सकते है इनमे उपरोक्त चारों प्रकार के समीकरण आ गए है —

बचत $=$ विनियोग	(पारिभाषिक समीकरण)
उत्पादन $=$ अ $+$ ब श्रम $+$ स पूँजी	(प्राविधिक समीकरण)
बैंक रिजर्व $=$ अ बैंक जमा	(साख्यिक समीकरण)
माँग $=$ अ $-$ ब मूल्य	(व्यवहार समीकरण)

इन समीकरण को लिखते समय दो बातो की ओर ध्यान जाता है। प्रथम समीकरण का रूप (या रचना—Structure) क्या हो? द्वितीय, समीकरण मे किन

चरो (Variables) को स्थान दिया जाए ? समीकरण के ढाँचे के सम्बन्ध मे किसी सीमा तक रेखाचित्र (Graph) से मदद मिल सकती है। यदि रेखाचित्र मे
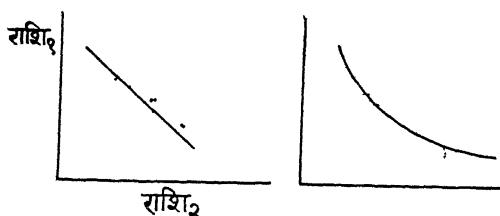
प्रदर्शित बिन्दु एक सीधी रेखा के समान आकृति (चित्र १ अ) बनाते है तो राशि₁ तथा राशि₂ मे सीधा सम्बन्ध होगा—

$$\text{राशि}_1 = \text{अ राशि}_2$$

अन्यथा (चित्र १ ब) सम्बन्ध वक्रीय होगा, यथा—

$$\text{राशि}_1 = \text{अ} + \text{ब राशि}_2 + \text{स राशि}_2^2$$

इस सम्बन्ध मे यह भी ध्यान रखना पडता है कि सम्बन्ध इस रूप मे हो कि अचर राशियो (Constants) का अनुगणन सुलभ हो। परन्तु मूलभूत कसौटी यह है कि प्रत्येक रचना समीकरण (Structural Equation) स्वतत्र (autonomous) हो अर्थात् यदि अन्य समीकरण हटा दिए जाएँ तब भी लिखित समीकरण सही हो। उदाहरणार्थ, उत्पादन = अ (यत्र घटे)। इससे पता चलता है कि प्रति घटा मशीन चलाने पर कितना उत्पादन होगा। अब यन्त्र का मूल्य तथा लाभ करने का सिद्धान्त कुछ भी हो, यह सम्बन्ध सही होगा। .. . (Structure) के सभी समीकरणो की स्वतत्रता की सामूहिक कल्पना स्वतत्रता-गुणक (Coefficient of autonomy) के रूप मे की गई है।

राशि-चुनाव (Selection of variables)—जहाँ तक राशियो के चुनने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध मे गुणक (Correlation Coefficient) निकालकर कुछ सहायता मिल सकती है। मान लीजिए कि हम गेहूँ के माँग की व्याख्या कर रहे हैं और सिद्धान्तत सोचते है कि—

गेहूँ की माँग = f (मूल्य, वैयक्तिक राष्ट्रीय आयँ, चावल का मूल्य)

अब यदि गेहूँ की माँग तथा मूल्य का सम्बन्ध गुणक ०·८ है, गेहूँ की माँग एव चावल के मूल्य का, ० २ तथा वैयक्तिक राष्ट्रीय आय के साथ गुणक ० ७ है तो अर्थ-मितिज्ञ चावल के मूल्य का ध्यान छोडकर निम्नलिखित समीकरण बना सकता है —

$$\text{माँग} = \text{अ} + \text{ब मूल्य} + \text{स आय}_1 + \text{द समय} + u$$

यहाँ u विभ्रम-राशि है। आय₁ का अर्थ है कि पिछले पक्ष की आय। यदि पक्ष को एक मास मान ले तो हम कह सकते है कि पिछले माह की आय (जो इस माह के आरम्भ में प्राप्त हुई) को आय₁ से दर्शित किया जायगा। इस प्रकार के समीकरण लिखने के सम्बन्ध मे निम्नलिखित मान्यताएँ (assumptions) निहित अथवा परम्परागत है—

(१) जिन हेतुक-राशियो (Causal factors) को समीकरण मे स्थान नही दिया गया है उनका प्रभाव (*i*) नगनप्राय तथा दैविक (accidental) है, अथवा (*ii*) प्रयुक्त आँकडो पर था ही नहीं, अथवा (*iii*) काल-राशि (अर्थात् समय) मे पूर्णतया प्रतिबिम्बित है। इस अन्तिम बात को ही लेकर अधिकतर समय को समी-

करण के दाहिनी ओर स्थान दिया जाता है ।

(२) जो कारण-राशियाँ समीकरण मे आई है उनका प्रभाव गणितात्मक (अधिकतर ऐकिक—Linear) रूप से पडता है जैसा ऊपर के समीकरण मे दिखाया गया है ।

(३) जो काल-अन्तर (Time-lag) है, वे मालूम हैं । इन्हे मालूम करने के लिये भी सांख्यिकीय क्रम-सहसम्बन्ध गुणक (Serial Correlation Coefficient) तथा साधारण सहसम्बन्ध गुणक का सहारा लिया जा सकता है । उपरोक्त उदाहरण मे मान लीजिये हम गेहूँ की माँग का सहसम्बन्ध गुणक वर्तमान आय, पिछले पक्ष की आय तथा दो पक्ष-पूर्व की आय से अलग-अलग निकालते और वे क्रमश ० २, ० ८, ० ३ होते तो अर्थमितिज्ञ यही निष्कर्ष निकालेगा कि पिछले पक्ष की आय को ही समीकरण मे स्थान देना चाहिए क्योकि उसका सहसबध गुणक सर्वाधिक (० ८) है ।

(४) कुछ विशेष निर्भरता-गुणको (Regression Coefficients) के चिह्न (signs) तथा मान-क्षेत्र (Interval of value) पहले से ज्ञात है । यथा, हम कह सकते है कि उपरोक्त सम्बन्ध मे 'ब' ऋणात्मक होगा, क्योकि मूल्य बढने पर माँग घटती है । इसी प्रकार यदि हम वर्तमान आय को पिछली आय द्वारा प्रभावित माने तो हम लिख सकते है कि

$$\text{उपभोग}_{\text{क}} = \text{अ आय}_{\text{क}-१} + u$$

यहाँ 'अ' का चिह्न धनात्मक होगा और 'अ' का मान '१' से कम होगा क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूर्ण आय को उपभोग पर नही व्यय करता है ।

अनुगणन समस्या—कारण-राशियों के चुनाव के सम्बन्ध मे यह भी ज्ञातव्य है कि राशि ऐसी हो कि उसका मापन किया जा सके । उदाहरणार्थ, 'मॉग' की परिभाषा होगी "निश्चित-काल पक्ष मे विक्रय की मात्रा" । मूल्य की परिभाषा स्वरूप हम कह सकते है कि यह उक्त पक्ष मे प्रचलित "औसत मूल्य" है । मूल्य की इस परिभाषा मे निहित समस्या सरल नही है । यदि निश्चित-काल पक्ष की बात न होती, तब भी यह प्रश्न उठता कि विभिन्न विक्रेताओ द्वारा लिये विभिन्न मूल्यो का किस प्रकार का औसत लिया जाए ।

यह समस्या उस समय अधिक जटिल होती है जब हम किसी समष्टिभावी चर (Macro-variable) को मापना चाहते है और तत्हेतु अन्वी-स्तरीय आँकडे (Micro Data) उपलब्ध नही होते है । उदाहरणार्थ, यदि कोई समीकरण है—

$$\text{Log मॉग} = \text{अ Log मूल्य} + u$$

और यदि दस विक्रेता हो एव प्रत्येक विक्रेता के मूल्य तथा मॉग के आँकडे ज्ञात हो तब तो सब को मिला कर हम कह सकते है कि

$$\Sigma\text{Log माँग} = \text{अ}\Sigma\text{Log मूल्य} + u$$

परन्तु यदि हमको सम्बन्धित उद्योग की कुल मॉग ($=\Sigma$ मॉग) ज्ञात हो तो हम अधिक से अधिक Log (Σ माँग) का उपयोग कर सकते है यद्यपि यह Σ Log मॉग के बराबर नही होगा । Σ Log मॉग का अर्थ होता है Log (ज्यामितिक औसत मॉग) $\times$ १० और Log (Σ मॉग) का अर्थ है Log (समातरीय औसत मॉग) + Log १० ।

ऐसी स्थिति मे अर्थमितिज्ञ को अतिरिक्त मान्यताओ को लेकर समस्या सुलझानी पडती है।

कभी-कभी तो क्रम-सहसम्बन्ध (Serial Correlation) का ध्यान दो बार (बारबार) समीकरण अनुगणन द्वारा करते है। मान लीजिये

$$\text{माँग} = \text{अ मूल्य} + u$$

उपलब्ध आँकडो के आधार पर जिस समीकरण का मान-आँकन हुआ उससे माँग के आँकडो की पूर्ण व्याख्या नही होती। समीकरण के आधार पर अनुगणित माँग यथार्थ विक्रय से अधिक निकलती है। तब अर्थमितिज्ञ माँगो के अन्तर के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है।

वर्ष	यथार्थ बिक्री	अनुगणित माँग	अन्तर (र)
१	१०	११	+१
२	१३	१३ ७	+० ७
३	१७	१९ २	+२ २
४	१५	१६ ४	+१ ४

ऐसी स्थिति मे अर्थमितिज्ञ अन्तरो (र) के मध्य निम्न प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है—

$$र_{क} = \text{अ}\ र_{क-१} + \text{ब}\ र_{क-२} + u$$

यहाँ u विभ्रम राशि है और यदि $र_{क-२}$ को पहले वर्ष का अन्तर कहे तो $र_{क-१}$ दूसरे वर्ष का अन्तर है और $र_{क}$ तीसरे वर्ष का अन्तर। इस प्रकार समीकरण मे हेतुक-राशियो की सख्या घटाना सम्भव हो जाता है और अनुगणन की असुविधा भी घटती है।

समीकरण के गुणक—जो समीकरण लिखा गया है उसकी अचर-राशियो (Constants) या निर्भरता-गुणक (Regression Coefficients) का मान निकालने की कसौटी क्या हो ? यदि निम्नाकित समीकरण सही है—

$$\text{माँग} = \text{ब मूल्य} + \text{स आय} + u$$

तो ब एव स का मान कैसे निकाला जाय ?

यदि $\text{माँग}_{०}$ और $\text{माँग}_{अ}$ क्रमश मापी गई माँग एव अनुगणित माँग है तो हम कह सकते हैं कि ब तथा स के मान ऐसे हो कि $\text{माँग}_{०}$ तथा $\text{माँग}_{अ}$ का सहसम्बन्ध गुणक अधिकतम हो। इसकी एक कसौटी यह है कि ब एव स ऐसे हो कि दिए काल पक्ष मे

$$\Sigma (\text{माँग}_{०} - \text{माँग}_{अ})^{२}$$

निम्नतम मान रखे। इसको "निम्नतम वर्ग पद्धति" (Method of Least Squares) कहते हैं। इसके अनुसार 'ब' तथा 'स' के एक-एक मान ही निकलेगे बशर्ते मूल्य तथा आय मे सहसम्बन्ध न हो। यदि यह सहसम्बन्ध पूर्ण हुआ तो ब तथा स के अनेको मान-द्वय (Pairs of values) हो सकते हैं। अर्थात् मान अनिश्चित होगे। यदि

सहसम्बन्ध कम (या तुच्छ) है तो ब तथा स के मान पूर्णत. नही वरन् अज्ञात ही अनिश्चित होगे। यह अनिश्चितता ज्ञात हो सकती है अर्थात् 'ब' तथा स के मान की सीमाएँ अनुगणित की जा सकती है बशर्ते (जैसा फिशर ने कहा था)।

(१) मूल्य तथा आय अर्थात् हेतुक-चरो (Causal factors) के मान सही हो; अथवा उनके एक ही मान-द्वय (Set of values) के लिए माँग (अर्थात् निर्भर-चर—dependent variable) के कई मान ज्ञात हो।

(२) निर्भर-चर (=माँग) के विभ्रम (Errors) परस्पर स्वतन्त्र (mutually independent) हो।

(३) इन विभ्रमो का बारम्बारता-वक्र (Frequency curve) नार्मल (Normal) हो।

परन्तु अक्सर तीसरी शर्त पूरी नही होती है तथा हेतुक-चरो (Causal factors) मे तीव्र सहसम्बन्ध भी होता है। ऐसी स्थिति के लिए ब तथा स का मान निकालने का ढग फ्रिश (Frisch) ने बतलाया। उनकी मान्यताएँ निम्नाकित है—

(१) प्रत्येक चर-मान (value of variable) के दो अश है—एक व्यवस्थित अश (Systematic component) तथा दूसरा विभ्रम अश (Error component)

(२) व्यवस्थित अशो के बीच पूर्ण हेतुक सम्बन्ध है।

(३) प्रत्येक चर के व्यवस्थित-मान तथा विभ्रम मान मे कोई सहसम्बन्ध नही है।

(४) सभी विभ्रम अश परस्पर स्वतन्त्र (Mutually independent) है अर्थात् उनमे कोई क्रम-सहसम्बन्ध (Serial Correlation) नही है। परन्तु जैसा कूपमैन्स ने बाद मे प्रदर्शित किया, फ्रिश के निदान (Solution) के अन्तर्गत $माँग_{०}$ एवं $माँग_{अ}$ का अन्तर आखिरी चर (यथा, आय) के विभ्रम (Error) के कारण माना जाएगा। परन्तु यह बात सही न होगी, यदि आय का माप ठीक-ठीक हुआ है।

अधिकतम सम्भावना पद्धति—समीकरण की अचर-राशियो के मान-अनुगणन हेतु अधिकतम सम्भावना पद्धति (Method of Maximum Likelihood) का भी उपयोग किया जाता है।

सर्वोत्तम समीकरण परीक्षण—यह आवश्यक नही है कि किसी समस्या के हल के सम्बन्ध मे केवल एक समीकरण हो। जहाँ कई समीकरण सम्भव है, वहाँ प्रत्येक की अचर-राशियो के मान निकाल लेने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि उनमे से कौन सर्वश्रेष्ठ है। इसका निर्णय समीकरण-उत्तमता परीक्षण (Test of goodness of fit) द्वारा किया जाता है। इस परीक्षण द्वारा केवल इतना ही सिद्ध होता है कि किस समीकरण द्वारा भूतकालीन आँकडो की व्याख्या सबसे अधिक पूर्णता से होती है।

असली परीक्षण तो इस बात मे निहित है कि भावी प्राक्कलन कहाँ तक सत्य उतरते हैं।

अस्तु, उपर्युक्त परीक्षण का आधार यह है कि भूतकालीन आँकडो और समीकरण से अनुगणित मान के अन्तर कहाँ तक नार्मल वितरण रखते है। यदि माँग के

आँकडे तथा अनुगणित माँग के मान निम्नांकित तालिका के अनुसार हो तो परीक्षण हेतु आवश्यक अनुगणन तीसरे, चौथे एव पाँचवे कालम मे दिए गए है—

माँग		अन्तर	अन्तर^{२}	अन्तर^{२}/अनुगणित
आँकडे	अनुगणित			
८	७	१	१	१/७=० १४
१०	९	१	१	१/९=०·११
१३	१२	१	१	१/१२=० ०८
१४	१५	१	१	१/१५=०·०७
१६	१८	२	४	१/१८=०·०६
				कुल ० ४६

० ४६ को ची-वर्ग (χ^2) का मान कहते है और यदि यह मान ची-वर्ग की तालिकाओ मे दिये उपयुक्त (relevant) मान से अधिक नही है, तो "माँग के आँकडो एव अनुगणित मान मे अन्तर है।" ऐसा नही कहा जा सकता है। यदि ची-वर्ग का अनुगणित मान तालिकीय-मान (Tabular Value) से अधिक होता है तो समीकरण को अनुपयुक्त समझने हैं।

समीकरण के विभिन्न निर्भरतागुणक के मानो के प्रमाणिक विभ्रम (Standard Errors) को निकालने के सूत्र है और उन्ही के आधार पर निर्भर चर (Dependent Variable) के मान के रेंज निकाले जा सकते है।

संकुलित रचना समीकरण (Reduced Structural Equation)—अर्थशास्त्री अर्थ-व्यवस्था (या बाजार व्यवस्था) के सम्बन्ध मे जिन आधारभूत समीकरणो को लिखता है वे रचना-समीकरण अथवा स्वतन्त्र (Autonomous) समीकरण कहलाते है। यथा,

माँग=अ मूल्य+ब आय+u
पूर्ति=स मूल्य+v
माँग=पूर्ति

यहाँ u यथा v विभ्रम राशियाँ है जिनका वितरण 'नार्मल' (Normal) समझा जाता है। उपर्युक्त समीकरणो से हम माँग एवं मूल्य को अलग-अलग भी निकाल सकते है—

$$\text{मूल्य} = \frac{\text{ब}}{\text{स}-\text{अ}}\text{आय} + \frac{u-v}{\text{स}-\text{अ}}$$

$$\text{माँग} = \frac{\text{स ब}}{\text{स}-\text{अ}}\text{आय} + \frac{\text{स } u - \text{अ } v}{\text{स}-\text{अ}}$$

इन्हे सकुलित समीकरण (Reduced Form Equations) कहते है और कभी-कभी इन्ही को लेकर निर्भरतागुणको के मान निकाले जाते है। क्योकि u तथा v का वितरण (Frequency Distribution) नार्मल है,

अत $\frac{u-v}{\text{स}-\text{अ}}$ और $\frac{\text{स}u-\text{अ}v}{\text{स}-\text{अ}}$ भी नार्मल वितरण रखते है। इसलिये यदि हम चाहें तो दिये माँग, मूल्य एव आय के आँकडो से $\frac{\text{ब}}{\text{स}-\text{अ}}$ तथा $\frac{\text{बस}}{\text{स}-\text{अ}}$ के मान निकाल सकते हैं। यदि वितरण नार्मल न होता तो हम ऐसा नही कर सकते थे। $\frac{\text{ब}}{\text{स}-\text{अ}}$ तथा $\frac{\text{बस}}{\text{स}-\text{अ}}$ के मान निकालने के साख्यिकीय सूत्र, जो निम्नतम वर्ग सिद्धान्त (Method of Least Squares) पर निर्भर है, निम्नाकित है :—

$$\frac{\text{ब}}{\text{स-अ}} = \frac{\Sigma \text{ मूल्य आय}}{\Sigma \text{ आय}^2}$$

$$\frac{\text{बस}}{\text{स-अ}} = \frac{\Sigma \text{ माँग आय}}{\Sigma \text{ आय}^2}$$

$$\therefore \quad \text{स} = \frac{\Sigma \text{ माँग आय}}{\Sigma \text{ मूल्य.आय}}$$

परन्तु ब तथा अ को ठीक-ठीक नही निकाला जा सकता है। यह न्यूनीत समीकरण के आधार पर अध्ययन करने की कमजोरी है। यह भी ज्ञातव्य है कि न्यूनीत समीकरण विधि के अन्तर्गत यह भी निर्णय करना पडता है कि किन समीकरण को मिला दे और किनको अक्षुण्ण स्वतन्त्र छोड दे। यथा, यदि ११ समीकरण है तो सम्भव है कि तीन को मिलाकर एक बनाया जा सकता है और शेष आठ इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हे मिलाना उचित न समझा जाए।

मुख्य न्यूनताएँ

अस्तु। अर्थमिति की तीन मुख्य कठिनाइयाँ अथवा न्यूनताएँ स्पष्ट समझनी चाहिएँ —

(अ) मॉडल अथवा सम्बन्ध-समीकरण अतार्किक (Arbitrary) होते है। समीकरण स्वतन्त्र रूप से सही न होकर सम्मिलित (Simultaneous) रूप मे सही होते है।

(ब) उपलब्ध आँकडे अपर्याप्त होते है और पूर्णतया सही भी नही होते है।

(स) समीकरणो को हल करना कठिन होता है निस्सन्देह मॉडल एक सीमा तक कल्पना पर आधारित रहेगे। जब वे सम्मिलित रूप से सही होते है तब निम्न-

तम वर्ग विधि के हल अक्षमतावान (Inefficient) कहे जाते है। ऐसी स्थिति को सँभालने के लिए आधुनिक विद्वान् अधिकतम सम्भावना सिद्धान्त (Principle of Maximum Likelihood) का प्रयोग कर रहे है। जहाँ सम्मिलित रूप से समीकरणो को हल करने की कठिनाई उठती है, वहाँ क्रमागत अनुगणन विधि (Method of Successive approximation) काम मे लाते है।

जहाँ तक चरो के मान मे विभ्रम होते हैं, निर्भरतागुणक के सही मान नही निर्णय हो सकते है। इस समस्या को हल करने के लिये चरो के 'सही अश' और 'विभ्रम-अश' की कल्पना की गई है और सगमगुणन-विश्लेषण (Confluence Analysis) की सहायता से सही अशो के सहसम्बन्ध गुणक अनुगणित करते है तब मान सम्बन्धी निकट-निर्णय (Fiduciary Judgment) लिये जा सकते है।

इस सम्बन्ध मे दो उपपत्तियो (Assumptions) का उल्लेख वाछनीय है। प्रथम, किसी चर के मान-विभ्रम (Error of measurement) का उसके सही माप से कोई नियमित सम्बन्ध नही है यद्यपि कभी-कभी यह उक्ति लागू नही होती। यथा, आय की अधिकता के साथ उसका माप-विभ्रम बढता है। द्वितीय, चर के माप-विभ्रम का किसी अन्य चर के माप-विभ्रम से कोई नियमित सम्बन्ध नही है। यह भी सदैव सत्य होगा, यह नही कहा जा सकता है। यथा, यदि उपभोग के माप मे विभ्रम है तो बचत में भी विभ्रम होगा यदि, आय=उपभोग+बचत।

जब शेष-विभ्रमो (Residual Errors) मे आपस मे सहसम्बन्ध होता है तो उन्हे पुन स्वतन्त्र-विभ्रम रूप देने के लिए आजकल "स्वनिर्भर परिवर्तन सिद्धान्त" (Principle of Autoregressive Transformation) का प्रयोग करते है।

अर्थमिति और समाजवादी व्यवस्था—कहा जाता है कि पूँजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत उठने वाली व्यवसाय चक्र सम्बन्धी व्याख्या करने तथा राष्ट्रीयकृत एव एकाधिकारीय (अधिकतम लाभ) की मनोवृत्ति पूर्ण करने के लिए पूर्ति एव योग की लोच निकालने और द्वितीय महायुद्ध काल मे साधनों के विषय वितरण सम्बन्धी कठिनाइयो (bottlenecks) को सेना-विभाग के हित मे दूर करने के लिये अर्थ-मिति और ऐकिक आयोजन का विकास हुआ। यह किसी सीमा तक सही है परन्तु इसके अर्थ नही है कि ऐसी समस्याएँ साम्यवादी या समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत नही उठती। युद्ध या तत्सदृश किसी भी राष्ट्रव्यापी समस्या को हल करने के लिये समष्टिभावी विश्लेषण आवश्यक होगा। भारतीय योजना आयोग तथा भारतीय साख्यिक परिषद् मे ऐसे अध्ययन किये जा रहे है। इसके अतिरिक्त वस्तु विशेष की माँग एव पूर्ति की लोच को समझने की भी आवश्यकता पडेगी—कुछ इसलिये कि आय-वितरण जानकर भावी माँग को जाना जा सकेगा और कुछ इसलिये कि जन-सख्या-वृद्धि के कारण बढने वाली माँग का ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा। जिस क्षेत्र मे राज्य द्वारा वस्तु का उत्पादन अथवा वितरण हो रहा है वहाँ भी अर्थमितीय अध्ययन सहायक सिद्ध होंगे। समाजवादी व्यवस्था मे भी वैयक्तिक उत्पादन और वस्तु-हस्तान्तरण की सुविधा दी जाती है। अत पैरेटो का आय-वितरण रेखा सम्बन्धी अर्थमितीय विश्लेषण उपयोगी है।

अध्याय ६

अर्थशास्त्र में अनिर्धारिता

किसी भी शास्त्र मे—अत अर्थशास्त्र मे भी हम विभिन्न अन्तर्निर्भर राशियो के सम्बन्ध का अध्ययन करते है। अधिकतर इसके लिए हम एक या कुछ राशियो को चुनकर कुछ अन्य राशियो के रूप मे उसका सही मान निर्धारित करते है। इस निर्धारण मे हम दो प्रकार की क्रिया करते है —

१—निर्धारणीय साधनो और निर्धारक साधनो के सम्बन्ध का स्वरूप निश्चित करते है।

२— इस सम्बन्ध मे आई हुई अचर राशियो का मान निश्चित करते है।

सर्वप्रथम हमे इस योग्य होना चाहिए कि हम इस सम्बन्ध मे आई हुई राशियो को माप सकें ताकि उनका मान निर्धारित किया जा सके। इस स्थान पर आर्थिक और नार्थिक (non-economic) का अन्तर स्पष्ट कर देना वाछनीय है।

आर्थिक और नार्थिक राशियाँ—उन राशियो को आर्थिक राशियाँ कहा जाता है जिनका उपयोग करने के अर्थशास्त्री आदी-से हो गये है। अतएव वे सब ही राशियाँ जिनका उपयोग अर्थशास्त्री नही करते आए हैं, नार्थिक राशियो की श्रेणी मे रखी जा सकती है। ऐसी राशियो (शक्तियो) के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) मानवीय त्रुटि
(२) मानवीय आवेग
(३) राजनैतिक परिवर्तन
(४) मुद्रा-प्रणाली मे जनविश्वास की दृढता
(५) श्रमिक-सघो की शक्ति
(६) नियोक्ता-सघ

वास्तव मे देखा जाए तो आर्थिक राशियाँ वे हैं जिनको अर्थशास्त्री सरलता से मापते आए हैं, अत. नार्थिक राशियाँ वे है जिनको सरलता से मापने मे अर्थशास्त्री अभी तक असमर्थ रहे है। आर्थिक व्याख्या मे इन नार्थिक तथ्यों को या तो समय के रूप मे लिया जाता है या 'उनके गुणात्मक प्रभाव की विवेचना कर ली जाती है। उदाहरण के लिये यह कहा जा सकता है कि सन् १९३०-३१ से पूर्व श्रमिक-सघो के आग्रह से मजदूरी (अतएव कीमतें) अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर पर बनी रही थी।

आन्तरिक और बाह्य राशियाँ—यहाँ आर्थिक चरो के एक अन्य भेद का भी उल्लेख किया जा सकता है। कुछ चर आन्तरिक चर होते है और कुछ बाह्य चर। आन्तरिक चल वे है जिनका निर्धारण (सकुचित अर्थ मे) आर्थिक शक्तियो के कारण होता है, जैसे, उत्पादन, नियोजन, मूल्य, ब्याज और लाभ। बाह्य चर वे है जो आर्थिक

प्रणाली की सीमा से बाहर वाली शक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। यहाँ पर आप पूछ सकते है कि "आर्थिक शक्तियो" और "आर्थिक प्रणाली की सीमा" के क्या अर्थ लगाये जाएँ ? वास्तव मे इनका सकेत उन आर्थिक राशियोंकी ओर है, जिनका उपयोग अर्थशास्त्री करते आये है। यही कारण है कि अर्थशास्त्री कहते है कि बाह्य राशियो का निर्धारण प्राकृतिक, प्राविधिक, राजनैतिक, समाजशास्त्रीय या सास्थिक शक्तियो से होना है और ये शक्तियाँ नार्थिक है। बाह्य राशियो के उदाहरणस्वरूप अर्थशास्त्री मुद्रापूर्ति, राजकीय व्यय, कर, जनसख्या की वृद्धि एव काल-प्रवृत्तियो का उल्लेख करते है क्योकि अधिकोष, विधान सभा, सामाजिक रीतियाँ, सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाये, सब सास्थिक है और उपरोक्त बाह्य राशियो को प्रभावित करते है ?

इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक चरों का भेद आर्थिक और नार्थिक राशियों के भेद से कुछ भिन्न है। मुद्रा-पूर्ति एक आर्थिक राशि है क्योकि इसको हम माप सकते हैं, साथ ही यह बाह्य चर भी है क्योकि इसका निर्धारण अधिकोष आदि शक्तियो से होता है जो आर्थिक-प्रणाली की सीमा के बाहर है ।

यही बात राजकीय व्यय और जनसख्या के सम्बन्ध मे भी है। परन्तु भेद करने मे इस बात पर बल दिया गया है कि सम्बन्धित राशियो का निर्धारण किन शक्तियो से होता है। यदि वे राशियाँ ऐसी है जिनका निर्धारण सास्थिक शक्तियो से होता है और इस निर्धारण की प्रक्रिया को हम आर्थिक विश्लेषण के अन्तर्गत नही ला सकते तो हम उनको बाह्य राशियाँ कहेगे। जिन राशियो के सम्बन्ध मे हम जानने हैं कि उनका निर्धारण आर्थिक शक्तियो द्वारा होता है उनको हम आन्तरिक राशियाँ कहते है। अतएव कुछ आर्थिक राशियाँ ऐसी है जिनका निर्धारण नार्थिक राशियो से होता है और इसलिए उनको बाह्य राशियाँ कहा जाता है।

परन्तु यह तनिक भी वाछनीय नही है क्योकि इससे बहुत सी ऐसी राशियाँ आर्थिक राशि की प्रणाली से बाहर छूट जाती है जिनको अर्थमितिज्ञ आन्तरिक मानते है क्योकि "बहुत कम" राशियाँ ऐसी है जिनके निर्धारण मे नार्थिक राशियो का हाथ नही रहता। मैं "बहुत कम" का प्रयोग इसलिए करता हूँ कि ऐसी राशियाँ जो नार्थिक राशियो से प्रत्यक्ष रूप मे प्रभावित नही होती अँगुलियो पर गिनाई जा सकती हैं, यथा, क्रय-विक्रय के शेष। अतएव यह कहना अधिक युक्तियुक्त होगा कि बाह्य राशियाँ वे है जिनका उपयोग अर्थशास्त्री मात्रिक सम्बन्धो के स्थापन में नही करते अर्थात् जिनका उपयोग आर्थिक सम्बन्धो के गणितीय व्यवहार मे नही किया जाता। यह बात कम से कम साख्यिक या अर्थमितीय अध्ययनो के सम्बन्ध मे सत्य है।

अपर्याप्त राशिजन्य अनिर्धारिता—इस प्रकार विभिन्न राशियो को ध्यान मे रखकर हम सभी कारणो की सहायता से विभिन्न गणितीय मान निकालते है। परन्तु कुछ राशियाँ हमारी मापने की शक्ति से बाहर हैं। अतएव इस प्रकार के गणित द्वारा सम्बन्ध निर्धारित करने मे हम ऐसी राशियों का उपयोग नही कर सकते। फलत इन समीकरणो से प्राप्त मान वे मान नही हैं जो हमे व्यवहार या वस्तु स्थिति मे मिलते है। इस प्रकार एक तरह की अनिश्चितता आ जाती है। इस प्रकार की दो अन्य अनिश्चितताएँ या अनिर्धारिता पाई जाती हैं जिनका उल्लेख हम आगे करेगे।

सम्बन्धगत अनिर्धारिता

विभिन्न तथ्यो के बीच सम्बन्ध का स्वरूप निर्धारित करना आसान नही है। फिर भी कुछ तो निगमन के आधार पर और कुछ आगमनात्मक अध्ययनो की सहायता से अन्य समस्याओ की अपेक्षा किसी विशेष समस्या के उपयुक्त सम्बन्ध रूप को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ, कहा जाता है कि आय से उपभोग अधोलिखित रूप मे निर्धारित होता है—

$$उ = अ + बइ + त्र$$

उ, उपभोग, इ आय, और त्र आकस्मिक घटनाओ का प्रतिनिधित्व करता है और अ तथा ब अचर-राशियाँ है। उसी प्रकार कभी-कभी निम्नलिखित उत्पादन फक्शन का उल्लेख करते है —

$$य = अ\ ल^{प} . म^{न}$$

यहाँ य, उत्पादन, ल, श्रम और म, पूँजी का द्योतक है। अब यह एक परिपाटी-सी बनती जा रही है कि राशियो मे ऐकिक (Linear) सम्बन्ध लिया जाय, और उनका अध्ययन अधोलिखित शीर्षको के अन्तर्गत करते है —आगत-निरागत व्याख्या, बहु-सम्बन्ध-व्याख्या, ऐकिक आयोजन। अतएव एक ही सही सम्बन्ध स्वरूप के अभाव से एक प्रकार की अनिर्धारिता उत्पन्न होती है।

रचनात्मक एवं संकुलित समीकरण—विभिन्न राशियो के सम्बन्ध की एक और भी विशेषता है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। रचनात्मक समीकरण और उद्यत या सकुलित समीकरण मे एक भेद बताया जाता है। रचनात्मक समीकरण आर्थिक प्रणाली के आधारभूत रचना के द्योतक हैं, इस प्रकार के समीकरण के दृष्टान्त-स्वरूप अर्थशास्त्री उत्पादन सम्बन्ध, लाभ समीकरण, अधिकतम लाभ की दशाये या समीकरण की ओर सकेत करते है। जैसे,

$$उ = अ + बइ + त्र$$

एक रचनात्मक सम्बन्ध है जो कि गृहस्थी के माने गये उपभोग व्यवहार सिद्धान्त से निकाला गया है या उसी का सक्षिप्त रूप है। जब कि एक दूसरा समीकरण है—

$$इ_{क} = पइ_{क-१} + न + र$$

जिसमे $इ_{क}$, इस वर्ष की और $इ_{क-१}$ गत वर्ष की आय है, तथा र दूसरी आकस्मिक घटना है। यदि हम इ या $इ_{क}$ को दोनों पक्षो से निकाल दे तो सकुचित समीकरण इस प्रकार

$$उ = (अ + ब\ न) + ब\ प\ इ_{क-१} + (त्र + बर)$$

यह आवश्यक नही है कि यहाँ पर उ का मान वही हो जो प्रथम रचनात्मक समीकरण मे होगा। उ के मान मे इस भेद से एक प्रकार की अनिर्धारिता हमारे विश्लेषण मे आ जाती है। ससर्गवश इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि सकुलित समीकरण के कारण किसी राशि का मान निकालने के लिये हमे सब ही रचनात्मक समीकरणो को जानना आवश्यक नही है।

वैधिक अनिर्धारिता

जब हम सम्बन्ध के स्वरूप को किसी प्रकार निश्चित कर लेते है, हमारे सामने एक तीसरी अनिर्धारिता आ जाती है। यह निश्चित नही है कि अचर राशियो जैसे, अ, ब, आदि के सही मान के लिये किस गणित-विधि का प्रयोग किया जाय। साधारणतया हमारे गणित साहित्य मे अब तक अधोलिखित विधियाँ वर्तमान है, परन्तु यह निश्चित नही है कि किस विधि से हमे अधिकतम युक्तियुक्त प्राप्त होगा—

१ न्यूनतम वर्ग विधि (Method of Least Squares) जिसका प्रयोग अधिकतर किया जाता है।

२ विचलन-विधि (Method of Moments)।

३ अधिकतम सम्भावना विधि (Method of Maximum Likelihood)

इनमे से सुविधा की दृष्टि से ही हम अधिकतर प्रथम विधि का प्रयोग करते है, परन्तु मान निकालने की युक्तिसंगत विधि को निर्धारित करने मे "सुविधा" कोई कसौटी नही है।

गणितीय अनिर्धारिता

एक चौथी प्रकार की अनिर्धारिता का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। साधारणतया अर्थशास्त्री यह स्पष्ट करके ही सन्तुष्टि पाते रहे कि जितने चर हो उतने ही मान-निर्धारक समीकरण भी हो। हमेशा यह मान लिया गया कि मान-निर्धारण की यह विधि केवल आवश्यक एव पर्याप्त ही नही है वरन् आश्रित चरो के मान निकालने की एकमात्र विधि है। अब इस बात का भी अनुभव किया गया है कि यह मानना सदैव सत्य नही है। पर्याप्त समीकरणो के होते हुए भी हो सकता है कि ये समीकरण उपर्युक्त हल न दे सकें। यह भी आवश्यक नही है कि प्रत्येक चर का एक ही हल हो।

यह मानना ही पडेगा कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर कलन एव परिमित अन्तर कलन दोनो मे एक प्रकार की अनिर्धारिता आती है। सीमान्त-व्याख्या मे तो अति सूक्ष्मता से चर परिवर्तित होते रहते हैं। इस व्याख्या मे यह मान लिया जाता है कि जब एक राशि अतिसूक्ष्मता से परिवर्तित होती है तो अन्य राशियाँ अपरिवर्तित या अचल रहती हैं। परन्तु यह मानना युक्तिसंगत नही है। ऐसा विरली परिस्थितियो में ही होता है कि उत्पत्ति के सभी साधनो को एक साथ बढाये बिना एक ही साधन को बढाकर उत्पादन बढ़ता है। यदि हम कहे कि उत्पत्ति सम्बन्ध य=अ+प ल+न म से निर्धारित होता है तो साधारणतया हम कहते है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता 'प' है।

अगर हम इसकी परीक्षा अधोलिखित उदाहरण मे करे तो प्रतीत होगा इसका बहुत कम औचित्य है। उदाहरणार्थ, एक मशीन पर एक मजदूर कार्य करता है। अगर दूसरे व्यक्ति को काम पर लगाया जाए तो एक स्थिति यह है कि दूसरा व्यक्ति तब काम करे जब पहला व्यक्ति अपने निश्चित समय तक काम कर चुकता है। अर्थात् यन्त्र का प्रगाढ उपयोग होगा। अन्यथा, पहला व्यक्ति अपने कार्य-काल में

कुछ समय के लिए विश्राम लेगा और और बदले मे दूसरा व्यक्ति काम करेगा। इस दृष्टान्त मे यन्त्र पर एक ही आदमी उतने ही समय तक काम करता है। अन्तर केवल इतना ही है कि यन्त्र पर लगे श्रमिक की एक बार बदली होती है अर्थात् थके-माँदे घोडे के स्थान पर एक नया घोडा काम पर लगाया जाता है। फिर भी इस प्रकार की सीमान्त व्याख्या मे भी असगतता के तुल्य ही अनिर्धारिता वर्तमान है।

भौतिक विज्ञानवेत्ताओ द्वारा अनुभूति अनिर्धारिता

प्रकरणवश यह उल्लेख किया जा सकता है कि क्वाटम यान्त्रिकी के अध्ययन मे भी अनिर्धारिता की समस्या है और यह जानना रोचक है कि भौतिक विज्ञानवेत्ता इस अनिर्धारिता के सम्बन्ध मे क्या सोचते तथा समझते है। हीजनबर्ग ने क्लासिकल कार्य-कारण सम्बन्ध पर सन्देह प्रकट किया। उनका कथन था कि किसी भी प्रणाली की आरम्भिक दशाएँ ज्ञात नही हो सकती है। अतएव किसी भी आने वाले समय मे प्रणाली की क्या अवस्था होगी इसका अनुगणन नही किया जा सकता। फलत इस सम्बन्ध मे हम भविष्यवाणी नही कर सकते। ब्होर, बोर्न, एडिंगटन और डाइरेस भी इसी मत के थे। प्लैंक और आइस्टीन का मत भिन्न है।

प्लैंक का मत है कि माप की अनियतता माप प्रक्रिया के स्वभाव से उत्पन्न होती है। अतएव वे दृष्टा और उसके उपकरणो को दर्शित या विषय-प्रणाली के अन्तर्गत मानते हैं और इसलिए प्रकृति के सब ही नियम कारणिक रूप से कार्य करने लगते है। सम्भाविता की धारणा तब ही उत्पन्न होती है जबकि हम उपकरणो की सत्यता के सम्बन्ध मे कोई विचार नही करते। क्योंकि इस्से सारे हेतु सम्बन्ध मानव-मस्तिष्क पर निर्भर हो उठते है, एक ऐसे आदर्श मस्तिष्क की धारणा करनी होती है जो भौतिक जगत् मे घटने वाली घटनाओ को सक्षिप्त-से सक्षिप्त रूप मे ग्रहण कर सके। परिस्थितियो के प्राकृतिक परिणामस्वरूप ही मानव, उसका मस्तिष्क तथा उसके उपकरण प्रकृति के ही एक अग हैं। अतएव वह प्रकृति के विधान का उल्लघन नही कर सकता और न उनसे बच ही सकता है। परन्तु आदर्श मस्तिष्क इन नियमो की सीमा से बाहर है ताकि वह किसी भी घटना को ठीक-ठीक रूप मे पहले ही समझ सके और भविष्यवाणी कर सके। फिर भी व्यवहार मे भौतिक विज्ञानवेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वैज्ञानिक अनुसधान तथा भौतिक विवरण देते समय सम्बन्धो की अनिर्धारिता से नही बच सकते।

अध्याय ७

अर्थशास्त्रीय हेतुक-सम्बन्ध

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। अतएव अर्थशास्त्र का विद्यार्थी वैज्ञानिक अध्ययन अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्ध के अध्ययन मे रुचि रखता है। हम किसी भी कार्य से कारण का अनुमान करते हैं, परन्तु सभी कार्यों के कारण एक ही स्वभाव (Nature) के हो ऐसी बात नही है। सामान्यत हम अध्ययन-सुविधा के लिए कारणो को निम्न-लिखित तीन वर्गों मे विभक्त कर सकते है —

(१) मात्रिक रूप मे (Objectively) समझे (Conceived) और मापे जा सकने वाले कारण।

(२) वे कारण जो विषय-रूप से (Subjectively) समझे न जाने पर भी मात्रिक रूप से मापे जा सकते है।

(३) वे कारण जो समझे तो जा सकते है परन्तु मात्रिक रूप में मापे नही जा सकते।

हम माँग के उपर्युक्त प्रथम वर्ग मे आने वाले कारणो मे वस्तु का मूल्य, उपभोक्ता की आय और वस्तु की पूर्ति का उल्लेख कर सकते है। दूसरे वर्ग मे आने वाला एकमात्र कारण, काल (Time) है, जिसका माप हम पेण्डुलम की सतत गति की सहायता से करते है। जिन कारणो को हम स्पष्ट रूप से समझ नही सकते और जिनको हम केवल इसीलिए मानते है कि प्रत्येक कार्य (effect) का कोई न कोई कारण (Cause) अवश्य होता है ऐसे कारणो को हम अवसरीय (Chance), दैविक (random) या स्टॉकैस्टिक (Stochastic) कहते है। दैविक कारणो के प्रभाव को अवशिष्ट (Residual) की सज्ञा दी जाती है।

काल का महत्त्व—प्रथम और द्वितीय वर्ग के कारण नियमित कहे जाते है। इनमें द्वितीय वर्ग मे आने वाला 'काल' विशेष लक्षण रखता है। जब हम किसी कार्य का विश्लेषण प्रथम वर्ग के कारणों से नहीं कर सकते, तब हम सोचते है कि उस कार्य विशेष के पीछे ऐसी कारण-शक्तियाँ नियमित रूप से कार्य कर रही है जिससे कार्य (प्रभाव) काल-क्रम (time-series) रूप मे दृष्टिगोचर होता है। अतएव यद्यपि हम इन कारणो को व्यक्तिगत नाम नही दे सकते, उनके सम्मिलित प्रभाव के रूप को समझने का प्रयत्न करते हैं।[1] अतएव, उदाहरणार्थ, हम माँग के चार कारणों (अर्थात् वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, वस्तु की पूर्ति और 'काल') का उल्लेख कर सकते हैं।

१. हम काल को एक कारण रूप में लेते हैं और यह अध्ययन करते है कि काल के साथ कार्य किस प्रकार बदलता है।

कभी-कभी जब हम प्रथम वर्ग के कारणो का उल्लेख नही कर सकते या किसी कारणवश हम उन कारणो को प्रकाश मे नही लाना चाहते तब हम कार्य का अध्ययन यह मानकर करते है कि उसका एकमात्र कारण "काल" ही है। उदाहरणार्थ, जब हम जनसख्या का अन्तर्गणन (interpolation) या बाह्यगणन (extrapolation) निम्नलिखित सूत्र से करते है, तब अनुगणन मे 'काल' शक्ति को ही महत्त्व देते है—

$$य = अ + बक + सक^{2} + दक^{3}$$

यहाँ य, जनसख्या, और क, काल-इकाई का प्रतिनिधित्व करते है। अ, ब, स तथा द अचर राशियाँ (Constants) है।

भावी माप

प्रथम वर्ग के "कारणो' और "काल-शक्ति" मे एक उल्लेखनीय अन्तर है। प्रथम वर्ग के कारणो को हम अग्रिम रूप मे माप नही सकते परन्तु काल-शक्ति को हम पहले से भी माप सकते है। यथा, हम यह नही कह सकते कि आज से पाँच साल बाद वस्तु का मूल्य क्या होगा परन्तु हम कह सकते है कि पाँच साल बाद काल का माप क्या होगा। हम प्रथम वर्ग के कारणो के मान या समक (observations) केवल भूतकाल और वर्तमान काल[1] के लिए ही जान सकते है।

काल-शक्ति को अनुगणन में लाने की विधियाँ—यह आवश्यक नही है कि काल का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से किया ही जाय। उदाहरणार्थ, हम कह सकते है कि वस्तु की इस साल की माँग का कारण इस वर्ष और गत वर्ष के (*i*) वस्तु का मूल्य, (*ii*) वस्तु की पूर्ति, एव (*iii*) उपभोक्ता की आय है। वास्तव मे, इस उदाहरण मे भी काल-शक्ति का विचार आ ही जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए यह समझ ले कि हम मिश्रधन (Amounts) के सम्बन्ध मे निम्नलिखित दोनो कथन कह सकते हैं :—

(*i*) मिश्रधन = गतवर्ष का मिश्रधन + उस पर एक बर्ष का (५% की दर से) ब्याज।

(*ii*) मिश्रधन = मूलधन $(१ + द)^{क}$

यहाँ 'द', प्रति रुपया वार्षिक ब्याज दर है और 'क' काल बताता है।

प्रथम शक्ति मे "काल-शक्ति" स्पष्ट रूप से उल्लिखित नही है परन्तु दूसरी शक्ति मे यह स्पष्ट है। इसी उदाहरण को हम एक अन्य प्रकार से कह सकते है—

मिश्रधन = गतवर्ष का मिश्रधन + गतवर्ष के मिश्रधन मे वार्षिक परिवर्तन

इस प्रकार की शक्ति के अर्थशास्त्रीय उदाहरणस्वरूप हम कह सकते है कि किसी वस्तु की माँग उसके मूल्य और मूल्य मे काल-परिवर्तन-दर (Rate of Change Over time) पर निर्भर करती है।

कभी-कभी हम प्रथम वर्ग के कारणो का उल्लेख करते है और साथ ही उनमें से कुछ कारणों को काल के रूप मे कहते हैं। यथा, हम कह सकते है कि किसी

---

१. क्या कोई समक वर्तमान काल का भी होता है। समक से सम्बन्धित काल तुरन्त भूतकाल बन जाता है।

वस्तु की माँग का कारण वस्तु का मूल्य होता है और वस्तु का मूल्य निम्न प्रकार से निर्णीत होता है :—

$$प = अ + बक + सक^2 + दक^3$$

यहाँ प = मूल्य, क = काल और अ, ब, स तथा द अचल राशियाँ है। जब हम कहते है कि मूल्य का कारण-काल है तब स्पष्टतया यह अर्थ हुआ कि माँग का भी कारण काल है।

कभी-कभी हम माँग का कारण मूल्य और काल दोनो ही कहते है :—

$$माँग = f\ (प) + \phi\ (क)$$

यहाँ f (प), प का फक्शन (function) है।

उदाहरणार्थ, f (प) के स्थान पर ४—३ प लिख सकते है। इसी प्रकार

ϕ (क) 'क' का फक्शन है।

सामान्यत हम निम्नलिखित समको मे एक, कुछ या सब का उपयोग हेतुक समको के रूप मे कर सकते है :—

(१) काल के अतिरिक्त अन्य शक्तियो के भूतकालीन समक।

(२) काल के अतिरिक्त अन्य शक्तियो के वर्तमान समंक।

(३) उपरोक्त दोनो समको मे सम्बन्ध, यथा, गति की दर या पूर्ति-परिवर्तन दर।

(४) काल के माप।

उदाहरणार्थ, हम माँग को सूत्र रूप मे निम्न प्रकार लिख सकते है :—

(i) माँग = ४ — ० ५ वर्तमान मूल्य + ०·२ गत वर्ष का मूल्य।

= ४ — ०·३ वर्तमान मूल्य — ०·२ वर्तमान मूल्य।

+ ०·२ गत वर्ष का मूल्य।

= ४ — ०·३ वर्तमान मूल्य — ०·२ (वर्तमान मूल्य—गत वर्ष का मूल्य)

= ४ — ०·३ वर्तमान मूल्य — ० २ मूल्य मे वार्षिक परिवर्तन

(iii) माँग = ४ — ०·३ वर्तमान मूल्य — ०·२ मूल्य-परिवर्तन-दर।

(iv) माँग = ४ — ०·३ वर्तमान मूल्य + ० १ काल।

गणित के शब्दो मे हम इसी उदाहरण को इस प्रकार भी लिख सकते है :—

(१) $म_क = अ - ब\ प_क$

(२) $म_क = अ - बप_क + स\ प_{क-१}$

(३) $म_क = अ - ब\ प_क + स \frac{dप}{dक}$

(४) $म_क = अ - बप_क + सइ_{(क-१)} + गक$

यहाँ म = माँग, प = मूल्य, इ = आय, क = काल, क — १ = गत वर्ष। और अ, ब, स तथा ग अचर राशियाँ हैं।

शक्तियों का वरण

अब हमारे सामने निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं :—

(१) किन समको का उपयोग किया जाए ?

(२) समको के आन्तरिक सम्बन्ध की रचना क्या हो ?

पहली समस्या के हल स्वरूप हम कह सकते है कि उन शक्तियो और सम्बन्धित समको का उपयोग किया जाये जो कार्य (या प्रभाव) को पूर्ण-रूप से (या अधिकाशत या पर्याप्त रूप से) कारण-रूप मे समझा सके।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमे कार्य की व्याख्या की पूर्णता (Complete explanation) के लिए बाध्य करता है। अब इस मत मे परिवर्तन हो रहा है। अब यह समझा जाता है कि कुछ आकस्मिक अथवा अवसरीय शक्तियाँ ऐसी है जो एक प्रकार से अनियमित है और इनके कारण यह असम्भव है कि हम किसी कार्य को पूर्णरूप से समझा (explain) सके। इसलिये हमारा यही लक्ष्य होना चाहिए कि चुने गये कारण कार्य-विशेष को अधिकाश रूप मे निर्णीत कर सके।

रचनात्मक सम्बन्ध—दूसरी समस्या यह है कि समको का रचना-सम्बन्ध (Structural relationship), किस प्रकार का होना चाहिए ? जब हम अर्थशास्त्र मे मॉडलो (या आधाराकृतियो models) पर विचार करते है तब हमारे मस्तिष्क मे या तो विभिन्न मॉडलो के लिए (*i*) अलग-अलग कारण शक्तियाँ या (*ii*) अलग-अलग रचना-सम्बन्ध, या (*iii*) दोनो ही होते है। ऐसा माना जाता है कि रचना-सम्बन्ध अपरिवर्तित रहता है। परन्तु इस रचना-सम्बन्ध मे परिवर्तन का स्पष्टीकरण करने की दृष्टि से हम कह सकते है कि मॉग का—

पूर्व मॉडल $=$ ४ $-$ ०·५ मूल्य,

परिवर्तित मॉडल $=$ ४ $-$ ०·५ मूल्य^{२}

अर्थात् जहाँ पहले दाहिनी ओर केवल मूल्य आता था, अब मूल्य का वर्ग आता है।

साधारणतया रचनात्मक-परिवर्तन कालान्तर मे होते है। यह परिवर्तन या तो आन्तरिक (Endogenous) शक्तियो या बाह्य-शक्तियों (Exogenous) के कारण होता है। अतएव रचना-परिवर्तन के कारणो को अलग करना एक कठिन समस्या है। हाँ, यदि प्रभाव-परिवर्तन (Change in effect) ज्ञात है तो शायद यह पता लगाया जा सकता है कि वह परिवर्तन रचनात्मक है अथवा नही।

जब किसी मॉडल मे रचनात्मक-परिवर्तन होता है तब मॉडल की आन्तरिक शक्तियो (Endogenous factors) का प्रभाव घट जाता है और काल-शक्ति एव दैविक शक्ति (Random forces) का प्रभाव अधिक हो जाता है। तब हम यह समझ लेते है कि रचनात्मक सम्बन्ध मे परिवर्तन करने का समय आ गया है।

पूर्ण हेतुक सम्बन्ध—हेतुक शक्तियाँ और रचना-सम्बन्ध निश्चित हो जाने पर भी एक अन्य समस्या सामने आती है। हमको भूतकाल के ऑकडो के आधार पर अचर राशि अ, ब, स, द, का मान (Value) ज्ञात करना है। 'मान' को पूर्ण रूप से ठीक-ठीक (exact) हल करने के लिये हमको इन आँकडो के उतने ही सेट (Sets) का प्रयोग करना है जितनी अचर राशियाँ है। यदि हम रचना सम्बन्ध मॉग $=$ अ $-$ बप को ले ले तो अ और ब के मान के लिये दो मूल्य और दो

सम्बन्धित माँग का ज्ञान होना चाहिये। इससे जो भी सम्बन्ध मिलेगा उससे हम दोनो भूतकालीन घटनाओ की पूर्ण व्याख्या कर सकते है। परन्तु इस बात का कोई विश्वास नही है कि यही मॉडल भावी घटनाओ की भी व्याख्या करने के लिये पर्याप्त होगा।

न्यूनतम वर्ग विधि (Method of Least Squares)

यह आवश्यक नही है कि हमको सदैव उपर्युक्त स्थिति का सामना करना पडे। सम्भव है कि माँग और मूल्य के १०० जोडे (Sets) है। ग्राफ-पत्र पर हम १०० बिंदु चित्रित कर सकते है। इनकी सहायता से हम $100C_2$ अर्थात् ४,९५० सरल रेखाओ को खीच सकते है। अन्य शब्दो मे, हम अ और ब के ४,९५० हल निकाल सकते है। इनमे से कौनसा हल चुना जाए? इस निर्णय के लिये हमको किसी विशेष कसौटी की सहायता लेनी ही पडेगी।

इस सम्बन्ध मे मुख्यत दो विधियाँ उल्लेखनीय है—(१) न्यूनतम वर्ग विधि (Method of Least Squares) और अधिकतम सम्भावना विधि (Method of Maximum Likelihood)।

न्यूनतम वर्ग विधि को साथ के रेखाचित्र की सहायता से समझा सकते है। अ, ब, स, द, त एव थ, माँग और मूल्य के छ प्रतीक-बिंदु है। हम "म=अ—ब प" प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं और मान लीजिये कि य, ल रेखा इसकी प्रतीक है। अ, ब, स, द, त, एव थ बिंदु से खीची गई शीर्ष रेखाये क्षैतिज रेखा पर लम्ब है। ये शीर्ष रेखाये य ल रेखा को क्रमश: य, र, ह, प, भ एव म पर काटती है।
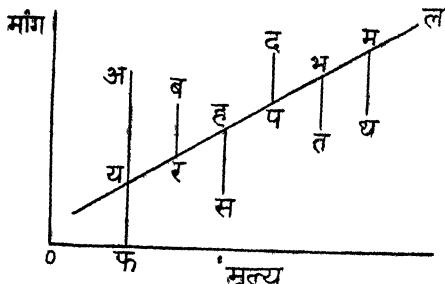
अयफ रेखाश कफ मूल्य पर माँग का प्रतीक है। यल मॉग रेखा के अनुसार कफ मूल्य पर रेखांश ०फ मॉग का अनुगणित मान है। अत अफ—यफ अर्थात् अय वास्तविक (observed) और अनुगणित (estimated) मॉग के मानो का अन्तर है। अन्य शब्दो मे अय रचनात्मक सम्बन्ध—रेखा से वास्तविक मान का विचलन (deviation) है। इसी प्रकार बर, सह, दप, तभ एव थम भी शेष पॉच समंको से सम्बन्धित विचलन है। यदि वास्तविक अनुगणित मॉग मे कोई अन्तर न होता तो अ, ब, स, द, त और थ बिंदु 'यल' रेखा पर ही होते अर्थात् यल रेखा द्वारा हम वास्तविक स्थिति समझ सकते है। अत 'यल' रेखा को चुनने की एक रीति यह हो सकती है कि सभी विचलन शून्य हो अथवा सभी विचलन के वर्गों का योग (जोड) न्यूनतम हो। न्यूनतम वर्ग विधि मे रचनात्मक सम्बन्ध की अचर राशियो के ऐसे मान चुने जाते हैं कि अय^2 + बर^2 + सह^2 + दप^2 + तभ^2 + थम^2 न्यूनतम हो।

अधिकतम सभावना विधि

दूसरे लक्षण को हम एक उदाहरण देकर समझा सकते हैं। मान लो एक

डिब्बे मे पॉच टिकट है जिन पर क्रमश १, २, २, ४, ५, नंबर पडे हो। हम उनमे से किन्ही दो टिकटो का एक जोडा $५C_२$ = १० प्रकार से ले सकते है। इसमे १ नबर वाला टिकट निकालने की सम्भावना (Probability) $\frac{१}{५}$, दो नबर वाले टिकट की $\frac{२}{५}$, ४ की, $\frac{१}{५}$ और ५ की $\frac{१}{५}$ है। सामान्यतया हम सोच सकते है कि प की सम्भावना का व्यजक f (प) फक्शन है। हम इस कार्य को इस प्रकार लिख सकते है :—

f (प, अ) = $\frac{१}{प^{अ}}$ जहां अ, अचल-राशि है। इसीं प्रकार हम कल्पना कर सकते है कि f (म, प, अ, ब) ऐसा सभावना फक्शन (Probability Function) है कि उससे किसी भी माँग और मूल्य सेट की सम्भावना ज्ञात होती है। अब यदि माँग और पूर्ति के १०० सेट है, यदि प्रत्येक सेट दूसरे सेट से स्वतन्त्र है और यदि प्रत्येक की सम्भावना ज्ञात है तो सम्भावना के गुणन सिद्धान्त (Multiplication Law of Probability) की सहायता से हम सभी १०० अनुभूत सेट की सम्भावना ज्ञात कर सकते है। यह सभी १०० सम्भावनाओ को गुणा करने पर मालूम किया जा सकता है। यदि $f_१, f_२, f_३, \ldots, f_{१००}$, सेट की सम्भावनाएँ हैं तो सभी सेटो की सम्मिलित सम्भावना निम्नलिखित है —

f (म$_१$, म$_२$, . . म$_{१००}$, प$_१$प$_२$ . . प$_{१००}$, अ, ब) अधिकतम सम्भावना विधि मे हम अचर राशियो का वह मान लेते हैं जिससे उक्त फक्शन का मान अधिकतम होता है।

उक्त समस्या के हल के लिये अन्य विधियाँ भी है, जैसे मोमेट विधि (Method of Moments) तथा क्रीडा-सिद्धान्त (Theory of Games)।

अधिकाशत: अचल-राशियो के मान-निर्धारण मे न्यूनतम वर्ग विधि का ही उपयोग होता है चाहे आर्थिक समाज व्यष्टिभावी हो (micro) या समष्टिभावी (macro)।

इन सम्बन्धो की खोज का कार्य अब ऐसे अर्थशास्त्रियो को दिया जा रहा है जिनको हम अर्थमितिज्ञ (Econometrician) की सज्ञा देते है।

अध्याय ८

अर्थशास्त्रीय मॉडल (आधाराकृतियाँ)

अर्थशास्त्री यह प्रयत्न करता है कि वह ससार के आर्थिक पहलू की व्याख्या एव विवेचना करे। तत्हेतु वह ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित करता है जिससे यथार्थ जगत् की घटनाओ को समझाया जा सके। इन सिद्धान्तो को जब गणितीय रूप मे व्यक्त करते है तो उन्हे **अर्थशास्त्रीय मॉडल** की सज्ञा देते है।

यदि हम सच्चे (ठीक) अर्थशास्त्रीय मॉडल बनाने मे सफल हो जायँ तो हम सम्बन्धित आर्थिक घटनाओ (यथा, मूल्य, मूल्य-परिवर्तन, उत्पादन और आय) की व्याख्या कर सकेगे। हमको ऐसे ही मॉडल बनाने चाहिएँ। कुछ अर्थशास्त्री यह मत प्रकट करते है कि हमको ऐसे सम्भव सर्वोत्तम (Best Possible) मॉडल बनाने चाहिएँ जो घटना-चक्र को समझ सके।

यथार्थ मे हमारे मॉडल ऐसे होने चाहिएँ कि उनकी सहायता से न केवल भूतकालीन एव वर्तमान आर्थिक घटनाओ की व्याख्या कर सके वरन् भावी घटनाओ का भी पूर्व-निर्धारण (forecasting) हो सके। यह पूर्व-निर्धारण इसलिए आवश्यक है कि उपयुक्त आर्थिक नीति निर्धारित की जा सके।

मॉडल अध्ययन के रूप—आर्थिक मॉडल कुछ मान्यताओ पर निर्भर होता है और जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है उससे विचाराधीन घटना-चक्र की व्याख्या करते हैं। आर्थिक मॉडल निर्माण की विधि दो प्रकार की है। प्रथम, "दिए हुए तथ्यो के आधार पर कोई फर्म कैसे उत्पादन निर्णय करेगी ?" इस समस्या मे हम फर्म के निर्णय-आधार (यथा, अधिकतम लाभ) को मान कर चलते है। द्वितीय, क्योकि फर्म ने यन्त्र एव माल के इतने स्टाक अपने पास रखें, उसका निर्णय-आधार क्या था ? यहाँ हम निर्णय-आधार की तलाश मे हैं। प्रथम के अतर्गत कारण दिए हैं और निष्कर्ष निकालते है। दूसरे के अतर्गत निष्कर्ष दिए है और उनके कारण की तलाश है। प्रथम के अतर्गत निगमन (Deductive) विधि द्वारा हम अधिकतम-लाभ आधार के बारे मे निश्चित मत है। दूसरी स्थिति मे हम फल को जानते है, आधार को नही।

धैर्यपूर्वक विचार करने पर पता चलेगा कि दोनो स्थितियो मे समस्या एक सी है। प्रथम के अन्तर्गत हम कुछ तथ्यो के आधार पर किसी अन्य तथ्य (यथा, उत्पादन, मूल्यादि) की व्याख्या करने का ध्येय रखते हैं और द्वितीय के अतर्गत भी

---

१ इस सम्बन्ध में एक विपक्ष-तर्क ज्ञातव्य है। यदि भविष्यवाणी ठीक-ठीक कर लें तब भी क्या निर्णीत आर्थिक नीति के प्रभाव के कारण भविष्यवाणी गलत न हो जायगी ? यह सम्भव है। कुछ अर्थशास्त्रियों का कथन है कि विभिन्न आर्थिक नीतियों का भी मॉडल में विचार रखा जा सकता है परन्तु यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता है।

हम कुछ तथ्यो के आधार पर किसी अन्य तथ्य (यथा, माल के स्टाक) की व्याख्या करने का प्रयत्न करते है।

मॉडल सम्बन्धी अध्ययन स्तर—अर्थशास्त्रीय मॉडल निर्माण के कदम निम्नाकित होने चाहिएँ। सर्वप्रथम हम उस घटना का पूर्ण विवरण दे जिसकी व्याख्या करनी है। द्वितीय, मान्यताओ के उन विभिन्न सेटो (sets) का विवरण लेखनीबद्ध कर ले जिनमे से प्रत्येक के आधार पर सम्बन्धित घटना की व्याख्या सम्भव है। तृतीय, सभी विश्वस्त ज्ञात नियमो के आधार पर उपर्युक्त छँटाई करे। अत मे जो सेट बच जाएँ उन सभी को सम्बन्धित घटना की व्याख्या हेतु सम्भव-उपयुक्त माने। उदाहरणार्थ, उत्पादन-निर्णय का आधार देश-सेवा, शून्य घाटा एव अधिकतम लाभ—कुछ भी हो सकता है। यदि उत्पादन के साथ उत्पादक धनी होता जाता है तो देश-सेवा और शून्य घाटे की बात खतम हो जाएगी।

व्यवहार मे क्या होता है—अर्थशास्त्रीय मॉडल बनाने वाले अधिकतर इस बात का विचार करते पाए जाते है कि (i) उनकी मान्यताएँ (assumptions) युक्तपूर्ण (reasonable) है, (ii) भौतिक मात्रिक सम्बन्ध (physical relations) व्यवहार्य है, तथा (iii) सास्थिक (institutional) व्यवस्था को देखते हुए मान्यताओ मे कोई अतर-विरोध (mutual inconsistency) नही है। परन्तु इस प्रकार के अनुगणन-अध्ययन से यह निश्चय रूप से नही कहा जा सकता कि सभी सम्भव-सेटो पर विचार किया जा चुका है।

सीमाएँ

(१) हमारी कुछ भी मान्यताएँ हो उनके आधार पर जो अर्थशास्त्रीय मॉडल बनेगा वह भूतकालीन घटनाओ की ही पूर्ण व्याख्या कर सकता है। भविष्य मे क्या होगा यह कदापि ठीक-ठीक नही बताया जा सकता। यद्यपि कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि यदि उपयुक्त प्रवैगिक मॉडल बन जाय तो भविष्य का ज्ञान हो सकता है। मान लीजिये हमने एक अर्थशास्त्रीय मॉडल बनाया और उसके कारण न केवल भूतकालीन मात्राएँ वरन् अगले दस वर्षों के घटना-चक्र के बारे मे हम भविष्यवाणी कर पाए। तथापि यह दावे के साथ यह नही कह सकते कि ग्यारहवे वर्ष की विधियाँ उसी के अनुसार निकलेगी ही। ऐसा क्यो? क्योकि घटनाएँ स्थैतिक न होकर प्रवैगिक (भी) है अतः वे कालातर बदल सकती है।

(२) सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करे तो स्पष्ट होगा कि प्रत्येक (आर्थिक) घटना के मात्रिक (Quantitative) कारण भी होते है और उसके ऐसे कारण भी हो सकते है (i) जो मापे नही गए है, (ii) जो मापे नहीं जा सकते है, (iii) जिनकी अभी परिकल्पना भी नही की गई है। इन तीनो प्रकार के कारणो का आर्थिक मॉडल मे स्थान नही रह सकता है और इस सीमा तक कोई भी आर्थिक मॉडल यथार्थ जगत् की घटना की व्याख्या नही कर सकता।

(३) अर्थशास्त्रीय मॉडल मे वाछनीय एव अवाछनीय दशाओ का सम्यक् विचार नही होता है। जिस साधन या चर के कारणो का हम अध्ययन करते है उसका केवल एक पहलू ही विचारगत होता है। यथा, उपभोग के अन्तर्गत केवल कुल

उपभोग व्यय का विचार करते है, उपभोग के विभिन्न मदो और मदो की विभिन्न वस्तुओ एव वस्तुओ की किस्म का नही। उसी प्रकार हम श्रम की बेकारी और वृत्ति का विचार करते है परन्तु उसके स्वास्थ्य, सुखादि का नही। अत कुछ अर्थशास्त्रीय मॉडल के आधार अर्थ-नीति निर्धारण के लिये पर्याप्त नही है।

(४) आर्थिक मॉडल की अचर राशियो के मान निकालने के लिये जिन आँकडो का प्रयोग करते हैं तथा बाद मे जिन आँकडो के आधार पर अनुगणित मानो की उपयुक्तता की परीक्षा करते है उनमे दृष्टात्मक विभ्रम (errors of observations) होते है। इसी प्रकार जैसा हम अर्थशास्त्र मे अनिर्धारिता के अध्याय मे बता चुके है, अचर राशियो के मान निकालने के भी कई तरीके है। अनुपयुक्त ढग अपनाने के कारण भी विभ्रम अधिक हो जायँगे।

मॉडल के भेद – जैसा कि "अर्थशास्त्र मे अनिर्धारिता" वाले अध्याय मे बता चुके है "नही मापे गए" कारण (या राशि या साधन) को नार्थिक राशि (non-economic factor) कहते है। अर्थशास्त्रीय मॉडल गणितीय होते है और इसलिए उनमे प्रयुक्त राशियाँ वही होती है जो मापी जाती हैं। इनमे से कुछ आन्तरिक चर (endogenous) हो सकती है और कुछ बाह्य चर (exogenous variables)। इसके आधार पर हम मॉडलो को तीन वर्गों मे बाँट सकते है —

(i) मुक्त मॉडल (open models)

(ii) अर्धमुक्त मॉडल या अर्धसरित मॉडल (semi-closed models)

(iii) संवरित मॉडल (closed models)

प्रत्येक मॉडल मे एक से अधिक समीकरण हो सकते है। परन्तु मुक्त मॉडल मे सभी अर्थशास्त्रीय राशियाँ (economic variables) बाह्य-राशियो (exogenous factors) द्वारा निर्णीत होती है। ऐसा मॉडल अभी तक किसी ने नही बनाया है।

अर्धमुक्त (या अर्धसवरित) मॉडल मे कुछ अन्तर-राशियाँ (endogenous factors) और कुछ बाह्यराशियाँ होती है। अधिकतर अर्थशास्त्री ऐसे ही मॉडल बनाकर इस आलोचना से बचते है कि उन्होने केवल अन्तर-राशियो का ही विचार किया है। कोलिन क्लार्क ने ऐसे ही मॉडल के द्वारा अमेरिका के आर्थिक चक्र (१६२१-४१) की व्याख्या करने का प्रयत्न किया था।

सवरित मॉडल मे केवल अन्तर-राशियाँ ही होती हैं। उनमे किसी बाह्य-राशि को स्थान नही मिलता है। केन्स, राबर्टसन, सोमर्स आदि ने ऐसे ही मॉडल बनाने का प्रयत्न किया है।

कुछ सवरित मॉडल ऐसे भी है जिनमे यह संपरिवर्तन किया गया है कि प्रत्येक समीकरण में एक विभ्रम-राशि भी रहती है। इन्हे हम संकुलित मॉडल (Reduced Form Model) कह सकते हैं।

नीचे हम अर्धमुक्त मॉडल के दो उल्लेखनीय उदाहरण देते है—

(i) कोलिन क्लर्क ने संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के आर्थिक चक्रो की व्याख्या करते समय निम्नलिखित सात समीकरण का मॉडल बनाया था—

(१) उपभोग $= f_1$ (वर्तमान आय, गत वर्षो की अधिकतम आय)

(२) आयात = f_2 (वर्तमान आय)

(३) स्थायी निर्माण-विनियोग = f_3 (वर्तमान आय, गत दशवर्षीय कुल निर्माण)

(४) अन्य स्थायी उत्पादन-वस्तु विनियोग = f_4 (वर्तमान आय, गत दश वर्षीय कुल ऐसा विनियोग)

(५) स्टाक वृद्धि = f_5 (बाजार सम्बन्धी आशा, वर्तमान बिक्री)

(६) वर्तमान बिक्री = f_6 (वर्तमान उपभोग, आयात, निर्यात, सरकारी क्रय, निर्माण विनियोग, अन्य स्थायी उत्पादन वस्तु विनियोग)

(७) वर्तमान आय = वर्तमान बिक्री + स्टाक वृद्धि

उक्त सम्बन्ध ऐकिक (linear) घात रूप मे लिखे गए थे, यथा,

उपभोग = अ₁ (वर्तमान आय) + ब (गत वर्षो की अधिकतम आय) + स₁

आयात = अ₂ (वर्तमान आय) + स₂

कोलिन क्लर्क ने इन दोनो को मिलाकर निम्नलिखित रूप मे लिखा था—

उपभोग—आयत = अ' (वर्तमान आय) + ब (गत अधिकतम आय) + स'

कोलिन क्लार्क के मॉडल मे बाह्य-राशियाँ ये है—राज्य-व्यय, निर्यात, द्रव्य-मात्रा, उत्पादन-वस्तु मात्रा तथा स्टाक। द्रव्य-मात्रा का प्रभाव स्टाक की मात्रा पर ही पडता है, ऐसा मान लिया गया था।

सभी द्राव्यिक मान (money-values) को चालू द्राव्यिक मजदूरी (current rate of money wages) से भाग देकर वास्तविक बना लिया गया था।

कोलिन क्लार्क ने जिन आन्तरिक राशियो के मानो का अनुगणन किया है वे यथार्थ मानो से बहुत कुछ मिलते-जुलते है। तथापि उनके उक्त प्रयत्न की निम्नलिखित आलोचनाएँ ज्ञातव्य है—

(अ) प्रत्येक आन्तरिक राशि के सभी कारणो का विचार नही किया गया है। अनुगणन-कार्य को व्यवहार-सम्भव (manageable) बनाने की दृष्टि से राशियो की सख्या घटा दी गई है। फलत कई राशियो के "यथार्थ" और अनुगणित मानो मे काफी अन्तर रहा है।

(ब) कोलिन क्लार्क के मॉडल से यह निष्कर्ष निकलता है कि सन् १६३३ मे अचर-राशियो (constants) के मान परिवर्तित हो गए क्योंकि शायद अन्य उपेक्षित शक्तियो मे परिवर्तन हुआ। परन्तु हमको इन उपेक्षित शक्तियो का पूर्ण ज्ञान नही है। अतएव हम यह दावा नही कर सकते कि अन्य किसी समय अचर-राशियो के मानो मे परिवर्तन करने का अवसर नही आया था।

(ii) रचनात्मक मॉडल[1] के नाम से मार्शक ने जिस विधि की व्याख्या की है वह भी अर्धमुक्त मॉडल है। उसमे आर्थिक एव नार्थिक (Non-economic) दोनो चर (Variables) आते है।

अर्थशास्त्रीय मॉडल मे समीकरण लिख लेने के बाद उनकी अचर-राशियो को निर्धारित करने के लिये समस्या उठती है। उनको निर्धारित करने के लिये इतने

१. देखिए अमेरिकन इक्नामिक रिव्यू, १६४७।

समीकरण रखते है जितनी आर्थिक चरो की संख्या होती है। दिये हुए (पूर्व) तथ्यो के आधार पर अचर-राशियो के मान निर्धारित किये जाते है।[१] इन समीकरणो मे दो कमियाँ होती है। प्रथम, दिये हुए तथ्य सारे आर्थिक-व्यवस्था के न होकर केवल उसके एक अश (Sample) के होते है। अत स्वाभाविक है कि सम्पूर्ण स्थिति और अश-स्थिति पर आधारित निष्कर्षों (यथा, अचर राशियो के मान) मे अन्तर हो। अन्य शब्दो मे अश-स्थिति पर आधारित "अचर-राशियो के मान" त्रुटिपूर्ण (with error) होगे।

द्वितीय, अचर-राशि के मानों मे त्रुटि होने का एक अन्य कारण यह होगा कि सभी सम्बन्धित कारणो (चर-राशियो) को समीकरणो मे स्थान नही मिलता है। अत. यह स्वाभाविक है कि इस कारण अचर राशि मान सही मान से भिन्न हो।

हम उपर्युक्त दोनो त्रुटियो को क्रमश "प्रथम त्रुटि" एव "द्वितीय त्रुटि" कहेगे। एक "तृतीय त्रुटि" की कल्पना की जा सकती है जिसका कारण समीकरण के रूप की अनुपयुक्तता (inappropriateness of form) है।[2] हम यह मान लें कि समीकरण उपयुक्त है एव प्रयुक्त राशियाँ भी उपयुक्त है तो केवल "प्रथम त्रुटि" रह जाती है। यदि इस त्रुटि का साख्यिकीय वितरण समान रहे, तो साख्यिकी सिद्धान्तो की सहायता से हम अध्ययन वाले चर-राशियो के मान का प्राक्कलन उसी प्रकार कर सकते है जिस प्रकार मौसम या तापमान का। परन्तु त्रुटि का साख्यिकीय वितरण भी तो बदल सकता है और हम यह नही बता सकते कि वह कब और कैसे प्रभावित होता है।[3]

सवरित मॉडल के उदाहरण

(१) **आय-निर्धारण**—अब हम सवरित मॉडल का एक उदाहरण देगे। इसका सम्बन्ध राष्ट्रीय आय निर्धारण से है। समष्टिभावी-अर्थशास्त्रीय अध्ययन (macro-economic studies) के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय की वृद्धि की समस्या प्रमुख रही है। केन्स, फ्रिश, राबर्टसन, कलेकी, टिबरजेन, हेन्सन आदि ने विभिन्न रूप मे इस ओर प्रकाश डाला है और राष्ट्रीय-आय निर्धारण का सूत्र लेखनीबद्ध करने की चेष्टा की

१ अचल-राशियों (Parameters) के मान के अनुगणन करने के विषय में हम पिछले "अर्थशास्त्र में हेतुक सम्बन्धी" वाले अध्याय में विशेष रूप से प्रकाश डाल चुके है।

२ इस तृतीय त्रुटि को अर्थशास्त्री—विशेषतया गणितीय अर्थशास्त्री भूल जाते है। उनकी प्रवृत्ति सदैव यही सोचने की रहती है कि जब कुछ राशियों के मान (values) बदलते है तो कुछ अन्य मान भी बदल जाते है ताकि सस्थिति बनी रहे, परन्तु उनके समीकरण (अत प्रतिक्रिया क्षमता) समान बनी रहती है।

३ मार्शक (Marschak) ने इन तीनों त्रुटियों का उल्लेख नही किया है। उन्होंने यह विचार नही किया है कि सभी सम्बन्धित चरों का समावेश समीकरण में न हो तो भी त्रुटि का उदय होगा। उन्होंने केवल नार्थिक चरों (Non-economic factors) का उल्लेख किया है (देखिए अमेरिकन इक्नामिक रिव्यू, मई १९४७) तथापि मार्शक स्वय यह समझते है कि व्यवहार में बिरले ही हम ऐसा पाएँगे कि समीकरण के रूप के समान बने रहें तथा नार्थिक-चरों में परिवर्तन न हो। क्योंकि समीकरण के रूप का भी कोई कारण होगा ही, अत' जब तक हम उस अन्तिम कारण की थाह न ले सकें तब तक हमारे मॉडल के अर्थमितीय अनुगणन का आधार भी कमजोर होगा।

है । अर्थशास्त्री सोमर्स ने अपने अग्रजो के अध्ययन का समन्वय करने की चेष्टा मे एक आय-निर्धारण मॉडल बनाया है जिसमे दस समीकरण है तथा ग्यारह चर (variables) हैं । ग्यारह मे से तीन चरो के वर्तमान तथा गतवर्षीय दोनो मान सम्बन्धित है । इन चरों के सकेताक्षर निम्नाकित तालिका मे स्पष्ट किए गए है—

	गतवर्षीय	वर्तमान
यथार्थ (Realised) आय	$इ_{वा\ (क-१)}$	$इ_{वा\ क}$
बचत —		
आयोजित[1]	—	$स_{निक}$
दैविक[2]	$स_{त्र\ (क-१)}$	$स_{त्रक}$
यथार्थ	—	$स_{वाक}$
विनियोग —		
आयोजित	—	$व_{निक}$
दैविक	$व_{त्र\ (क-१)}$	$व_{त्रक}$
यथार्थ	—	$व_{वाक}$
वास्तु[3]	—	$व_{त}$
यथार्थ उपभोग	—	$उ_{वाक}$
वास्तु उपभोग	—	$उ_{तक}$
ब्याज-दर	—	$र_{क}$

यहाँ 'क' काल का द्योतक है और (क—१) पिछले काल का । यदि क= १९५७ तो क—१=१९५६ । यहाँ हम वर्ष को काल-इकाई मान लेते है ।

इस वर्ष की ब्याज-दर $(र_{क})$ तथा गत वर्ष की दैविक बचत $(स_{त्र(क-१)})$, दैविक विनियोग $(व_{त्र\ (क-१)})$ एव आय $(इ_{क-१})$ दृष्ट मान (observed values) के रूप मे ज्ञात रहते हैं ।

सोमर्स गत वर्ष तक के दैविक बचत, दैविक विनियोग, आय एव वर्तमान ब्याज-दर के स्थान पर अपने समीकरण मे इनके कुछ वर्षों के औसत का उपयोग करते है । इन औसतो का हम क्रमश. $\overline{स}$, $\overline{व}$, $\overline{इ}$ तथा $\overline{र}$ द्वारा सकेत करेंगे ।

सोमर्स के मॉडल का कार्य-पद निम्न प्रकार से है—

(१) गतवर्षीय दैविक बचत-औसत एवं दैविक विनियोग-औसत से वर्तमान वास्तु-विनियोग तथा वास्तु-उपयोग का निर्णय होता है—

$$व_{वाक} = f_1\left(\overline{स}_{त्र\ (क-१)},\ \overline{न}_{त्र\ (क-१)}\right)$$

$$उ_{तक} = f_2\left(\overline{स}_{त्र\ (क-१)},\ \overline{व}_{त्र\ (क-१)}\right)$$

1 Planned. 2 Error from planned value 3 In kind.

(२) गतवर्षीय आय-औसत से वर्तमान वास्तविक उपयोग का निर्धारण होता है—

$$उ_{वाक} = f_3 \left(\overline{इ}_{क-१}\right)$$

(३) गतवर्षीय $\overline{स}_{त्र}$ (क—१) एव $\overline{व}_{त्र}$ (क—१) और वर्तमान ब्याज-दर-औसत $\left(\overline{र}_{क}\right)$ के आधार पर वर्तमान विनियोग-आयोजन का निर्धारण होता है —

$$व_{निक} = f_4 \left(\overline{स}_{त्र}(क-१), \overline{व}_{त्र}(क-१), \overline{र}_{क}\right)$$

(४) फिर वर्तमान दैविक विनियोग का निर्णय करते है—

$$व_{त्रक} = \left(उ_{तक} - उ_{वा\,क}\right) + \left)व_{तक} - व_{वा\,क}\right)$$

(५) तत्पश्चात वर्तमान वास्तविक विनियोग का ज्ञान होता है—

$$व_{वाक} = व_{निक} + व_{त्रक}$$

(६) इसके बाद वास्तविक वर्तमान बचत निकालते हैं :—

$$स_{वाक} = व_{वाक}$$

(७) वर्तमान वास्तविक उपयोग एव वर्तमान आयोजित बचत का योग गत-वर्षीय आय-औसत $\left(\overline{इ}_{क-१}\right)$ होगा यह मानकर अब वर्तमान आयोजित बचत निकालते है—

$$\overline{इ}_{वा}\ (क-१) = उ_{वाक} + स_{निक}$$

अथवा

$$स_{निक} = \overline{इ}_{वा}\ (क-१) - उ_{वाक}$$

(८) वास्तविक बचत एव आयोजित बचत का अन्तर दैविक बचत के बरा-बर होगा । अत

$$स_{वा\,क} = स_{नि\,क} + स_{त्रक}$$

अथवा

$$स_{त्रक} = स_{वाक} - स_{निक}$$

)९) वर्तमान वास्तविक उपयोग एव वर्तमान वास्तविक विनियोग के जोड को वर्तमान वास्तविक आय मान लेते है । अत

$$इ_{वाक} = उ_{वा\,क} + व_{वाक}$$

इस प्रकार चार चर-मान अर्थात् $\overline{स}_{त्र}$ (क—१), $\overline{व}_{त्र}$ (क—१), $\overline{इ}_{वा}$(क—१) एव $र_{क}$ को ज्ञात मानकर हम $स_{त्रक}$, $व_{त्रक}$ एव $इ_{वाक}$ का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं । फिर इन तीनो एव अगले वर्ष की चालू ब्याज-दर $\left(र_{क+१}\right)$ को जानकर

उपरोक्त दसो समीकरणो के आधार पर ईवा(क+१) आदि का पता लगा सकते है।

यह बताना आवश्यक है कि वर्षारम्भ मे बचत और विनियोग के आयोजित मान (planned targets) बना लिये जाते है। वर्षान्त मे इनके यथार्थ (या वास्तविक) मान (realised values) भिन्न हो सकते है। आयोजित मान एव वास्तविक मान के अन्तर को हम दैविक विभ्रम-मान (random error-value) कहेगे। यह अन्तर इस अर्थ मे दैविक (random) है कि आयोजित कार्य करते हुए भी अनियत्रित शक्तियो के कारण यह अन्तर पड गया।

सोमर्स के उपर्युक्त मॉडल मे प्रारम्भिक तीन आर्थिक चर-मान (value of economic factors) एव ब्याज-दर के अतिरिक्त शेष सभी कार्य आन्तरिक चरो (endogenous variables) के बल पर होता है। अत यह आन्तरिक मॉडल या सवरित मॉडल है। इसमे किसी बाह्य चर का प्रत्यक्ष प्रभाव नही है।

सोमर्स के इस मॉडल के प्रति तीन आलोचनाएँ उल्लेखनीय है प्रथम, बाह्य चरो को दूर रखकर मॉडल अ-कृत्रिम बन गया है। अनुगणन की सुविधा के लिए मॉडल को सरल रूप दिया गया है। सोमर्स और उनके साथी अर्थशास्त्री इस 'सरलता' अवगुण से भिज्ञ है परन्तु वे तब भी सोचते है कि मॉडल यथार्थ जगत् की घटनाओ का ढाँचा तो चित्रित कर ही देता हैं। द्वितीय, समष्टिभावी-मान (macro-values) अर्थशास्त्रीय भविष्यवाणी के लिए उपयुक्त नही है। समूचे राष्ट्र के उपभोग को राष्ट्र का उपभोग-व्यवहार करार देना उचित नही है और कम से कम वह राष्ट्र का उपभोग-नियम नही माना जा सकता। परन्तु समीकरण रूप मे इसे लिखने का अर्थ यही होता है कि हम उवाक को राष्ट्र उपभोग के नियम-स्तर पर रखते है। तृतीय, वर्ष को काल की इकाई मान लेने से ही यह कठिनाई दूर नही हो जाती कि उपभोग, उत्पादन, बचत, आय आदि का आरम्भ और अन्त कैलेन्डरीय वर्ष के आरम्भ व अन्त के साथ होता है। यथार्थ मे उपर्युक्त समीकरण मे काल का माप अर्थ-व्यवस्था के व्यवहारिक काल-पक्षो के आधार पर होगा। परन्तु जिन आँकडो को हम अनुगणन हेतु काम मे लाते हैं वे कैलेण्डर वर्ष के हो सकते है।

सोमर्स के मॉडल को देखते हुए यह भी विचार मन मे आता है कि उसमे कुछ बाह्य चरो को अवश्य स्थान देना चाहिए था। यह भी तर्क उठता है कि वर्तमान उपभोग पर न केवल गत वर्ष तक के आय औसत वरन् सचित धन (accumulated funds) एव द्राव्यिक शक्तियो (money factors) का भी प्रभाव पडता है।

(२) **आर्थिक चक्र**—एक अन्य उदाहरण व्यवसाय चक्र (business cycle) से सम्बन्धित है। हम जानते है कि पिछले कई सौ वर्षो के पश्चिमी आर्थिक इतिहास मे आर्थिक चक्रो की पुनरावृत्ति होती रही है। इस पुनरावृत्ति की व्याख्यास्वरूप एक सवरित मॉडल का गुडविन ने प्रतिपादन किया है।[1] इस मॉडल मे पूँजी-स्टाक एव राष्ट्रीय आय मे ऐकिक (linear) के स्थान पर अनैकिक (non-linear) सम्बन्ध

१ देखिए, इक्नोमेट्रिका, जनवरी, १९५१।

स्थापित किया गया है। मॉडल की अन्तिम स्थिति पर किसी भी प्रारम्भिक परिस्थिति का प्रभाव नही पडता है और अन्त मे क्रमिक (निरन्तर) (regular) आर्थिक चक्र का समा बँध जाता है। यही इस मॉडल की कमजोरी है कि आन्तरिक चर बाह्य चर या किसी दैविक प्रभाव के बावजूद अन्ततोगत्वा समान-कालीन (equal-period) आर्थिक चक्र स्थापित हो जाते है। क्योकि व्यवहारिक जगत् मे समान-कालीन आर्थिक चक्र पाने की आशा शून्य प्राय होती है अत भविष्यवाणी की दृष्टि से गुडविन-कृत मॉडल भी अनुपयुक्त है।

यदि हम कार्य-कारण-मॉडल के स्थान पर केवल भविष्यवाणी करने वाले मॉडल ले तो निम्नलिखित विचारो का उल्लेख कर सकते है—

(१) यह ज्ञात करने के लिये कि आर्थिक चक्र कब उन्नतमुखी (upturn) होगा और कब नतमुखी (downturn) हम कह सकते है कि

(अ) विभिन्न काल-श्रृखलाओ (Time series) को सतताश (Trend) वृत्ताश (cycles) एव दैविकाश (residue) मे बाँटना चाहिए। यदा-कदा आने वाले दैविक उत्पात-शक्तियो को भूल जाएँ, तो यह मत प्रतिपादित किया जा सकता है कि सतताश एव वृत्ताश के एक से ढाँचे (pattern) मिलते है और उनकी सहायता से आगामी चक्रीय तेजी-मदी का पूर्वकलन (forecasting) सम्भव है।

इस मत को लेकर डीवे (Dewey) एव डाकिन (Dakin) ने अनेक काल-श्रृखलाओ का अश-विच्छेदन (analysis into components) किया और पूर्वकलन की चेष्टा की। जहाँ उन्हे सफलता मिली, उनके पूर्वकलन अति भिन्न भी निकले और सन् १९४६ के बाद की युद्धोत्तरकालीन तेजी को वे भी मदी बता गए। दोनो लेखक अपने मत के साथ-साथ यह भी कह गए है कि परिस्थिति विशेष मे दैविक अन्तर उत्पन्न हो सकते हैं और निष्कर्षो को बुद्धिमत्तापूर्वक निकालना होगा। परन्तु उन्होने दैविक अन्तर के किसी कारण की ओर सकेत नही किया है।

इसी प्रकार डो (Dow) ने रेल एवं उद्योगो से सम्बन्धित काल-श्रृखलाओ को लेकर यह मत प्रतिपादित किया कि जब तक दोनो श्रृखलाएँ साथ-साथ सीधी रेखा मे चलती रहे, समान आर्थिक दशा रहेगी। जहाँ दोनो श्रृखलाएँ एक साथ तेजी से ऊपर या नीचे विचलित हो वही आर्थिक चक्र के उन्नतमुखी एव नतमुखी बनने की बात समझनी चाहिए। डो के पूर्वकलन न तो सन् १९२९ की तेजी को बता सके और न सन् १९४६ के बाद की निरन्तर तेजी को। यथार्थत उसने सन् १९४६ के बाद मन्दी की भविष्यवाणी की थी।

आर्थिक चक्र के सुनिश्चित परिवर्तन-क्रम (definite regular order) होते हैं— ऐसा मानकर ही "नेशनल ब्यूरो ऑफ इक्नामिक रिसर्च" एव "हार्वर्ड इक्नामिक सर्विस" पूर्वकलन करने की चेष्टा करते रहे है यद्यपि सन् १९२९ मे इन्हें सफलता न मिली। इनके कार्य का आधार यह पता लगाना था कि कौन सी काल-श्रृंखलाएँ आर्थिक चक्र से आगे-आगे चलती है और कौनसी पीछे-पीछे। इन श्रृखलाओ के अग्रिम पक्ष (period of lead) और अनुम-पक्ष (period of lag) का अनुगणन किया जाता है।

अर्थमितिक दृष्टिकोण

अर्थशास्त्रीय मॉडल मे अर्थमितिक, दृष्टिकोण[1] का प्रयोग एक नया प्रयास है। इसके अतर्गत समीकरणो के चार भेद माने जाते है—

(१) **पारिभाषिक समीकरण** (Definitional Equations) वे समीकरण है जो चरो की परिभाषा स्वरूप उदय होते है, यथा,

कुल बिक्री = मात्रा × मूल्य

वचत = विनियोग

द्रव्य-मात्रा × द्रव्य-प्रवेग = मूल्य-स्तर × विनिमय-मात्रा[2]

अथवा पत = पत्र

(२) **सास्थिक समीकरण** (Institutional Equations) के अतर्गत वे, सम्बन्ध आते हैं जो सस्थाओ के निर्णयवश सही है। यथा,

$$\frac{\text{बैको के कुल रिजर्व (र)}}{\text{बैको की कुल जमा (ज)}} = \text{बैक रिजर्व अनुपात } (\lambda)$$

$$\text{अथवा} \quad \text{ज} = \frac{\text{र}}{\lambda}$$

(३) **प्राविधिक समीकरण** (Technological Equations) अथवा **रूपान्तर समीकरण** (Transformation Equation) उत्पादन एव विभिन्न साधनो का सम्बन्ध बताते है। यथा,

उत्पादन = f (श्रम, पूँजी)

$$\text{अथवा} \quad \text{य} = \text{अ श्र}^{\text{ब}} \text{ प}^{\text{स}}$$

जहाँ य = उत्पादन, श्र = श्रम एव प = पूँजी तथा अ, ब, स अचर राशि है।

(४) **व्यवहार-समीकरण** (Behaviour Equations)— विभिन्न आर्थिक चरो के प्रति मानव प्रतिक्रिया के द्योतक होते हैं, यथा,

(i) माँग = f (मूल्य, आय, शेषाश)

अथवा म = अ + बप + सइ + दत्र

यहाँ म = माँग, प = मूल्य, इ = आय, त्र = शेषाश, अ, ब, स, द अचल राशि है।

(ii) बचत = f (आय, ब्याज-दर, शेषाश)

अथवा स = f (य, र, त्र)

यहाँ स = बचत, य = आय, र = ब्याज-दर, त्र = शेषाश।

शेषाश राशि (त्र) सभी अनुल्लिखित चरो (unspecified factors) का प्रतिनिधित्व करती है। इसको कभी-कभी अनियमित (unsystematic) राशि कहते है। यद्यपि यह सज्ञा उपयुक्त नही है क्योकि यह आवश्यक नही है कि अनुल्लिखित चर अनियमित हो।

इन सम्बन्धो मे काल का प्रभाव अप्रत्यक्ष होता है। यथा, केन्सीय मॉडल के

१. अर्थमिति के सम्बन्ध में अन्यत्र अध्याय में ज्ञान कराया गया है।

२ फिशर दत्त द्रव्य-समीकरण

अन्तर्गत हम लिख सकते हैं कि

$$आय_{क} = उपभोग_{क} + विनियोग_{क} + अनुगम\ विनियोग^{1}_{क} + त्र_{1}$$

$$उपभोग_{क} = अ\ आय_{क-१} + त्र_{२}$$

$$विनियोग_{क} = (स\ पूंजी\ की\ सीमान्त\ क्षमता_{क} - द\ ब्याज\text{-}दर_{क}) + त्र_{3}$$

$$अनुगम\ विनियोग_{क} = ब\ (उपभोग_{क} - उपभोग_{क-१}) + त्र_{४}$$

यहाँ क, वर्तमान काल और क—१, एक वर्ष पहले वाले काल के द्योतक हैं। अ तथा ब, जिन्हे क्रमश उपभोग-प्रवृत्ति (propensity to consume) तथा त्वरक (accelarator) कहते है, अचर-राशियाँ (constants or parameters) है।

इन समीकरणो के सम्बन्ध मे व्यवहारिक अनुगणन करते समय बहुधा सभी समीकरणो को मिलाकर एक बना लेते है, यथा,

$$आय_{क} = (१ + ब)\ अ\ आय_{क-१} + स\ पूंजीक्षमता_{क} - द\ ब्याज\text{-}दर_{क} - अ\ ब\ आय_{क-२} + त्र$$

और फिर $आय_{क}$ के अनुमान के प्रमाप-विभ्रम (Standard error of estimate) का अनुगणन करते है।

स्पष्ट है कि चारो प्रकार के समीकरणो मे निम्नलिखित तीन प्रश्न सामने आते है—

(१) समीकरण मे कौनसे 'चर' रखे जाएँ ? उदाहरणार्थ, जनसख्या के लिए जन्म-दर तथा मृत्यु-दर को चुने अथवा काल (time) को ?

(२) समीकरण की रचना क्या हो ? यथा, परवलीय वक्र (Parabolic curve) हो अथवा छेदिक वक्र (Logistic curve) ?

(३) समीकरण रचना का रूप क्या हो ? यदि यह रूप परवलीय वक्र-सा है तो वह द्वैघातिक (of Second Power) हो अथवा त्रैघातिक (Cubic) ?

प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध मे हैवेल्मो (Haavelmo) ने यह मत प्रकट किया है कि प्रत्येक अर्थशास्त्रीय चर के अनेक चर-निर्धारक होते है जिन्हे हम दो भागो मे बाँट सकते है —

(i) सम्भाव्य महत्त्व वाले चर।

(ii) यथार्थ महत्त्व वाले चर।

यदि हम सोचे तो हम गेहूँ की माँग (म) के कई निर्धारक शक्तियो का नाम लिख सकते है यथा, गेहूँ का मूल्य (प), जौ का मूल्य ($_{ज}$), गेहूँ खाने वालो की सख्या (ज), उनकी आय (य) तथा वस्त्र का मूल्य $प_{व}$ ये सभी सम्भाव्य महत्त्व वाले चर हुए। परन्तु जब हम गेहूँ की माँग और इन चरो के मध्य समीकरण स्थापित करते हैं तो (मान लीजिए) हम यह पाते हैं कि

$म = ०\ ५\ प + ०\ ००३\ प_{ज} + ००२\ ज + ०\ २\ य + ०००१\ प_{व}$ तो हम

१ अनुगम विनियोग=Induced Investment

कह सकते है कि $प_व$, $प_ज$ एव ज का यथार्थ महत्त्व शून्य-प्राय है। अतः केवल गेहूँ का मूल्य तथा आय ही यथार्थ महत्त्व वाले चल है।

हैवेल्मो के विचारानुसार बहुत सम्भव है कि प्राकृतिक नियम के अन्तर्गत स्वय ही किसी आर्थिक चर (economic variable) के कुछ (few) कारणीय चर (determining variables) होते हैं। अत हमको समीकरण के चलो का निर्णय यह बात ध्यान मे रखकर ही करना चाहिए। हैवेल्मो का यह विचार तार्किक नही है। यदि इसे मान भी ले तब भी यह तो सिद्ध करना रह ही जाता है कि 'कुछ' (few) से अधिक चरो को समीकरण मे स्थान देना लाभदायक नही है। यह भी विवादग्रस्त है कि जो चर आज (या अध्ययन-काल) मे शून्य-प्राय प्रभाव वाला सिद्ध हुआ है वह भविष्य मे भी ऐसा ही रहेगा। बहुत सम्भव है कि आज का सुप्त मानव कल का दानव सिद्ध हो—आज का सर्प-शिशु कल का तक्षक नाग।

दी हुई अर्थात् दृष्टा (observed) परिस्थितियो मे हैवेल्मो कतिपय रचना-सेटो (Sets of structures) की कल्पना करते है। प्रत्येक सेट एक मॉडल है। इस प्रकार कतिपय मॉडल की कल्पना सम्मुख आती है। प्रत्येक सेट की एक सम्भावना (Probability) होती है और हैवेल्मो उन थोडे से सेटो को चुनने के लिये प्रयत्नशील होते है जिनकी सम्मिलित सम्भावना "१ का अधिकाश" (Sufficiently near to one) है। इस सम्बन्ध मे वे नेमन-पिअर्सन सिद्धान्त के आधार पर साख्यिकिक अनुगणन करते हैं। परन्तु इतना सब करने के बाद भी कम सम्भावना वाले सेटो को छोड देना कहाँ का न्याय (या तर्क) है। ये सभी प्रयत्न मान्यता लक्षण (Character of assumption) से खाली नही है।

इसके अतिरिक्त जिन विशेष वर्गो मे समीकरणो का विभाजन किया गया है उनके सम्बन्ध मे भी निम्नलिखित बाते स्पष्टीकरण के ढंग पर लिखी जा सकती है—

(अ) सास्थिक नियम—विशेषतया जो राजनियम (State Laws) से सम्बन्धित है, व्यवहार मे वे सभी पूर्णतया लागू नही होते हैं। साधारणतया मत तो यह है कि राजनियम का उल्लघन होता है—विशेषतया सत्ताधारियो द्वारा। उल्लघन न भी हो तब भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि नियम इस प्रकार बनते है कि उनका कार्यान्वीकरण असन्दिग्ध होता है।

(ब) प्राविधिक समीकरण मे दुर्घटना, श्रम विरोध, सगठन-अक्षमता, कु-आयोजन, दैव-प्रकोप (या प्रताप) के लिए कहाँ स्थान रहता है ? व्यवहारिक अनुभव बताते है कि इन शक्तियो का प्रभाव आए दिन दिखाई पडता है।

(स) व्यवहार-समीकरण मे जिस मानव-व्यवहार को नियमबद्ध करने की चेष्टा की गई वह भी न नियमबद्ध ही प्रतीत होता है और न उसमे ऐतिहासिक परम्परा ही सिद्ध होती है। यह आवश्यक नही कि उपभोक्ता सदैव एक समान उपभोग करे कम्पनियाँ सदैव अधिकतम लाभ ले विनियोक्ता अधिक ब्याज-दर मिलने पर अधिक विनियोग करे।

भारतीय पचवर्षीय योजना के मॉडल (आधाराकृतियो) पर प्रकाश डालने की दृष्टि से इस अध्याय मे एक परिशिष्ट जोड दिया गया है। अगले अध्याय मे कुछ व्यवहारिक आर्थिक मॉडलो का ज्ञान कराया जाएगा।

परिशिष्ट

भारतीय पंचवर्षीय योजना की आधाराकृतियाँ

द्वितीय पचवर्षीय योजना का मूल श्रेय प्रो० महालनवीस को है और उनके कार्य का ढग अति सरल है। उस ढग को समझने के लिए दो-तीन प्रारम्भिक बाते ज्ञातव्य है। प्रथम, "प्रति श्रमिक-पूंजी" वह पूँजी है जिसको लगाने से किसी भी उद्योग की सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है। हम इसको "पूंजी-श्रमिक अनुपात" कहेगे और 'क' से इसका सकेत करेगे। प्रत्येक उद्योग के लिए 'क' की मात्रा भिन्न होगी। हम सभी उद्योगो के चार भाग करेगे—(१) उत्पादन-वस्तु उद्योग, (२) बडी मात्रा के उपभोग-वस्तु उद्योग, (३) छोटे व कृषि उद्योग, (४) सेवायें। इनसे सम्बन्धित सकेत होगे—$क_1$, $क_2$, $क_3$, तथा $क_4$। यदि इन उद्योग-क्षेत्रो मे क्रमश $म_1$, $म_2$, $म_3$ तथा $म_4$, मजदूर काम करें तो कुल आवश्यक पूँजी की मात्रा जिसका हम 'क' से सकेत करेगे, इस प्रकार होगी :—

$$क = क_1 म_1 + क_2 म_2 + क_3 म_3 + क_4 म_4$$

यदि 'क' का क्रमश $अ_1$, $अ_2$, $अ_3$ तथा $अ_4$ अनुपात उक्त प्रत्येक उद्योग-क्षेत्र मे लगता है तो हम कह सकते हैं कि उत्पादन वस्तु उद्योग क्षेत्र मे $\frac{क\, अ_1}{क_1}$ श्रमिको को काम मिलेगा अर्थात् $म_1 = \frac{क\, अ_1}{क_1}$

अत 'क' पूंजी से जितने मजदूरो (म) को काम मिलेगा वह इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$म = म_1 + म_2 + म_3 + म_4 = \frac{क\, अ_1}{क_1} + \frac{क\, अ_2}{क_2} + \frac{क\, अ_3}{क_3} + \frac{क\, अ_4}{क_4}$$

क्योकि स्पष्टतया,

$$क = कअ_1 + कअ_2 + कअ_3 + कअ_4,$$
$$१ = अ_1 + अ_2 + अ_3 + अ_4$$

ये दो समीकरण प्रो० महालनवीस द्वारा लिखित दो महत्त्वपूर्ण आधाराकृतियाँ हैं। प्रोफेसर महोदय की तीसरी आधाराकृति स्पष्ट करने से पूर्व उत्पादन-पूंजी अनुपात को समझ लेना चाहिए। सामान्यत वार्षिक उत्पादन का कुल लगी पूँजी (अर्थात् औसतन कारबारी पूंज) से जो अनुपात होता है, उसे "उत्पादन—पूंजी अनुपात" कहते है और हम इसका सकेत 'ब' से करेगे। उपर्युक्त चार उद्योग-क्षेत्रो के अनुपातो के सकेत होगे—$ब_1$, $ब_2$, $ब_3$, तथा $ब_4$। इन अनुपातो का अनुगणन करते समय अधिकतर उत्पादन का द्राव्यिक अर्घ लेते है और पूँजी का माप तो द्रव्य मे होता ही

है। द्राव्यिक अर्घ के कारण उक्त उत्पादन-पूँजी अनुपात-परिकल्पना की आलोचना की जा सकती है, परन्तु हम इस ओर बाद मे ध्यान देगे। अस्तु, हम कह सकते है कि प्रथम उद्योग-क्षेत्र मे जहाँ "क $अ_१$" पूँजी विनियोग की गई है, क $अ_१$ $ब_१$ उत्पादन होगा। इस प्रकार अन्य क्षेत्रो का उत्पादन निकाला जा सकता है अत 'क' पूँजी लगाने से क्षेत्रो का सम्मिलित उत्पादन निम्नाकित है—

$$क \ (अ_१ \ ब_१ + अ_२ \ ब_२ + अ_३ \ ब_३ + अ_४ \ ब_४)$$

यह अतिरिक्त उत्पादन ही राष्ट्रीय आय की वृद्धि, बन जाएगी। अत राष्ट्रीय आय की वृद्धि, जिसका सकेत हम 'य' से करेगे, निम्नाकित समीकरण से प्राप्त होगी—

$$य' = क \ (अ_१ \ ब_१ + अ_२ \ ब_२ + अ_३ \ ब_३ + अ_४ \ ब_४)$$

यदि पुरानी राष्ट्रीय आय "य" हो, यदि प्रतिवर्ष उसमे १०० र प्रतिशत की वृद्धि हो, और यदि हमारी योजना पचवर्षीय हो, तो पाँच वर्ष बाद आय-वृद्धि का माप निम्नाकित होगा —

$$य' = य \ [(१+र)^५ - १]$$
$$= क \ (अ_१ \ ब_१ + अ_२ \ ब_२ + अ_३ \ ब_३ + अ_४ \ ब_४)$$

द्वितीय पचवर्षीय योजना सम्बन्धित यह तीसरी आधाराकृति है। इन तीनो को पुन नीचे एक स्थान पर लिखना अनुचित न होगा —

$$(1) \quad य[(१+र)^५ १] = क \ (अ_१ \ ब_१ + अ_२ \ ब_२ + अ_३ \ ब_३ + अ_४ \ ब_४)$$
$$(2) \quad म = क\left(\frac{अ_१}{क_१} + \frac{अ_२}{क_२} + \frac{अ_३}{क_३} + \frac{अ_४}{क_४}\right)$$
$$१ = अ_१ + अ_२ + अ_३ + अ_४$$

मान लीजिए 'य' सन् १९५६ की राष्ट्रीय आय है, और यह निर्णय किया गया कि राष्ट्रीय आय मे प्रतिवर्ष ५% (=१०० र) वृद्धि हो। मान लीजिए कि हमने यह भी निश्चय किया कि पाँच वर्ष मे १०१ करोड अतिरिक्त व्यक्तियो ('म') को काम देना है, ७२०० करोड रुपये (क) का विनियोग करना है, और एक-तिहाई ($अ_१$) विनियोग उत्पादन-वस्तु उद्योगो मे लगाना है। अब वर्तमान उद्योग-धन्धो की स्थिति के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि चारो प्रकार के उद्योग क्षेत्रो मे 'ब' तथा 'क' की मात्रा क्या बैठती है। ये ज्ञान बडे उद्योगो की अर्थ गणना (Census of Manufactures), अन्य सर्वेक्षण तथा तथ्यो के आधार पर निर्णय किये गए थे। उपलब्ध तथ्य पर्याप्त तो नही थे परन्तु समय की शीघ्रता को देखते हुए शायद इससे अधिक कुछ नही किया जा सकता था। (देखिए कलकत्ता से प्रकाशित "सख्या" पत्रिका, दिसम्बर, १९५५)। अस्तु, तब उपर्युक्त समीकरण की सहायता से $अ_२$, $अ_३$, $अ_४$ का मान निकाला जा सकता है। द्वितीय पचवर्षीय योजना के साख्यिकीय परामर्शदाताओ ने अपने काम की यही रूपरेखा अपने सामने रखी थी। यह सम्भव है कि "ड्राफ्ट-प्लान (Draft plan) के प्रकाशन-तिथि पर यह बात बिलकुल स्पष्ट न रही हो और उपर्युक्त सैद्धान्तिक आधाराकृतियाँ कुछ बाद मे सामने आई हो परन्तु इतना निर्विवाद है कि इस समय साख्यिकीय परामर्शदाता इन्ही आधाराकृतियो से बँधा है।

यह ध्यान मे रखना चाहिए कि कुल विनियोग (क), कुल अतिरिक्त श्रमिक (म) तथा कुल अतिरिक्त आय (य') का निर्णय पहले ही हो गया था। यदि १ १ करोड श्रमिक (म) के स्थान पर हम १-५ करोड[1] श्रमिको को अतिरिक्त काम देना चाहते तो ऐसा सोचकर भी $अ_2$, $अ_3$ तथा $अ_4$ के मान निकाले जा सकते थे। अत यदि उपर्युक्त समीकरणो तथा 'ब' और 'क' की विभिन्न अनुगणित मात्राओ को मान ले तो योजना की साख्यिकीय आधारभूमि की आलोचना करना कठिन है।

अर्थशास्त्र की दृष्टि से उपर्युक्त समीकरणो मे दो मुख्य कल्पनाये निहित है। प्रथम, उत्पादन, श्रम तथा पूँजी मे सीधा आनुपातिक सम्बन्ध है—

$$य' = ब\ क = थ\ म$$

यहाँ 'ब' समूचे राष्ट्र के उद्योगो के उत्पादन और पूँजी का अनुपात है और 'य' इन सभी उद्योगो मे उत्पादन और श्रमिको का अनुपात है। इन परिकल्पनाओ का अर्थ यह है कि जहाँ तक पूँजी (अथवा श्रम) का प्रश्न है उत्पादन मे मात्रा का समान पल नियम (Constant Return to scale) लागू है। केन्स (Keynes) तथा काह (Kahn) जैसे अर्थशास्त्रियो ने समष्टिभावी-अर्थशास्त्रीय विश्लेषण (Macro Economic Analysis) मे ऐसी सरल सुविधाओ का उपयोग किया है। ऐसी अर्थ-व्यवस्था के लिए, जो पर्याप्त विकसित है तथा जहाँ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे ऐसे विशाल उद्योग-इकाइयो की स्थापना हो चुकी कि उनकी उत्पादन विधि और व्यवस्था मे कोई विशेष आमूल परिवर्तन करना अवाछनीय तथा कठिन है, क, 'ब' और 'थ' को मान लेना अधिक गलतियो का कारण नही होगा। परन्तु अविकसित देशो मे, जहाँ नये उद्योगो की स्थापना करते समय आधुनिकतम और नवीन उत्पादन-विधियो तथा व्यवस्थाओ को अपनाना सम्भव है, समान-प्रत्युपलब्धि नियम को आधार बनाना उचित नही प्रतीत होता।

सामान्यतया अर्थशास्त्र मे उत्पादन-पूँजी तथा श्रम मे निम्नलिखित सम्बन्ध माना जाता है—

$$य' = स\ (क)^{१} + ब\ (म)^{१}$$

डोमर (Domar), हेरड् (Harrod), डेविस (Davis) आदि अर्थशास्त्री उक्त सम्बन्ध पर जोर देते आये हैं। इस सम्बन्ध का सैद्धान्तिक आधार नितान्त तर्क-पूर्ण नही है और व्यवहारिक अध्ययनो के बल पर ही इसे विशेष महत्त्व मिला है। इसके आधार पर हम यह कह सकते है कि

$\frac{य}{क}$ = 'ब' गुणे 'क' की आशिक (Partial) सीमान्त उत्पादकता, तथा

$\frac{य}{म}$ = 'य' गुणे 'म' की आशिक सीमान्त उत्पादकता

यदि हम इन आशिक सीमान्त उत्पादकताओ को स्थैतिक (Static) मान सकें, तो हम $\frac{य}{क}$ तथा $\frac{य}{म}$ को भी स्थैतिक मान सकते है परन्तु ऐसा उचित

---

१. तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यही सोचा जा रहा है परतु यह नही कहा जा सकता कि विभिन्न क्षेत्रों के विनियोग-आँकड़े इसी प्रकार अनुगणित किये गये है।

नही है।

यह सम्भव है कि हम उत्पादन, पूंजी तथा श्रम के बीच निम्नाकित सम्बन्ध मान ले—

य=ब क+थ म

इसका तात्पर्य यह होगा कि यदि पूँजी दुगुनी की जाए तो श्रम की मात्रा भी दुगुनी करनी पडेगी, यदि हम उत्पादन (य) को दुगुना करना चाहते है। इस सम्बन्ध के अन्तर्गत 'क' तथा 'म' का (पूँजी तथा श्रम का आशिक सीमान्त अनुपातिक) सम्बन्ध सीधा तथा आनुपातिक नही है। सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत यह माना जाता है कि उत्पादन के एक साधन को दूसरे साधन से प्रतिस्थापित करते समय पहले क्रमागत ह्रास और अन्त मे क्रमागत वृद्धि की आवश्यकता पडती है। परन्तु योजनाकारो ने अनुगणन की कठिनाई के कारण कही भी इसके अनुरूप सम्बन्धो की परिकल्पना नही की है। भारतीय साख्यिकीय इस्टीट्यूट (Indian Statistical Institute), कलकत्ता मे भारतीय उद्योग-धन्धो से सम्बन्धित उपलब्ध आँकडो के आधार पर उत्पादन-समीकरणो के अध्ययन किये जा रहे है। वहाँ से निकलने वाली "सख्या" शीर्षक पत्रिका मे एक सज्जन द्वारा तत्सम्बन्धी अध्ययन के लिए निष्कर्ष भी प्रकाशित किये गए है।

साख्यिकिज्ञो द्वारा उत्पादन सम्बन्धी ऐकिक सम्बन्ध (Linear Relation) को मानकर कार्य करना एक अन्य कोण से भी विचारणीय है। "श्रम" के अन्तर्गत 'व्यवस्थापक" और "साहसी" का हाथ छिपा है। यदि पूंजी और श्रम का उपयुक्त निर्णय हो भी गया तो व्यवस्थापक और साहसी की भी कम-अधिक पूर्ति व क्षमता योजना-ध्येयो (Targets) की पूर्ति मे बाधक बन सकती है। हम मानते है कि पचवर्षीय योजना का अधिकाश सरकारी व्यय ऐसी मदो पर होगा जिससे वैयक्तिक साहसियो को कच्चे माल, यातायात, विद्युत आदि की सुविधा हो जाएगी और यह कहा भी जा सकता है कि वैयक्तिक साहसी जो काम करेगे उसमें व्यवस्थापक तथा साहस की पूर्ण क्षमता के प्रति सन्देह करना नितान्त उचित न होगा। परन्तु तब भी सरकारी तौर पर जो कुछ व्यय किया जाएगा उसके सम्बन्ध मे भी तो व्यवस्था की क्षमता पूर्ण होनी चाहिए। साख्यिकिज्ञो को चाहिए कि वे व्यवस्था, यातायात आदि महत्त्वपूर्ण सुविधाओ को भी अपनी आधाराकृतियो मे मात्रिक स्थान (Quantitative Role) प्रदान करे। टैरिफ कमीशन के सदस्य डा० मुरजन ने अपने ३६वे अखिल भारतीय अर्थशास्त्र सम्मेलन मे दिये सभापति-भाषण मे ऐसी बातो का दूसरे प्रकार से उल्लेख किया था।

नवीन विधियो और प्रणालियो के कारण आयोजित विनियोग ध्येय से अधिक उत्पादन को फलीभूत बनायेगा। यदि जूट, सूती, चीनी आदि मिलो मे युक्तीकरण के आधार पर नवीनतम उत्पादन विधि के यन्त्रो की स्थापना की गई तो सम्भव है कि पूँजी की अधिक आवश्यकता पडे और श्रम की कम। यह भी सम्भव है कि 'आयोजित से कम' पूंजी-विनियोग ही ध्येय पूर्ति कर दे। यदि ऐसा हुआ तो व्यर्थ ही जनता पर अधिक त्याग का भार डाला। हम त्याग के भार की बात इसलिए भी उठा रहे हैं

क्योकि आवश्यक त्याग के भार के उचित वितरण का विशेष प्रयत्न नही किया जा रहा है। योजना के कारण अधिक क्रय-शक्ति उच्च तथा निम्न वर्ग के हाथ मे अधिक जा रही है। इन दोनो वर्गों पर त्याग-भार अधिक होना चाहिए और मध्य वर्ग का त्याग-भार कम होना चाहिए। राजनीतिक दशाओ तथा अव्यावहारिकता के कारण ऐसे कदम नही उठाये जा रहे है। अत मध्यम-वर्ग पर त्याग-भार बढ रहा है। यह अवाछनीय बात है। अच्छा होता यदि साख्यिकिज्ञो ने योजनाकारो तथा सरकार को यह सलाह दी होती कि सौ रुपये से कम वेतन पाने वाले (अकुशल तथा कुशल) श्रमिको को वेतन का एक अश भावी वेतन-पत्र (Deferred pay-voucher) के रूप मे दिया जाए, जिसकी अवधि तीन वर्ष हो और एक अश (यदि वे लेना चाहे) तो अन्न-वस्त्र के रूप मे। पहिली युक्ति के कारण भिन्न आय वर्ग का वर्तमान त्याग-भार बढ जायेगा, और द्वितीय के कारण उक्त वर्ग के कारण होने वाली बाजार—माँग की वृद्धि नियत्रित तथा कम होगी। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार को चाहिए कि वे अब भी इन युक्तियो को कार्यान्वित करने की चेष्टा करे।

साख्यिकिज्ञो के कथनानुसार द्वितीय पचवर्षीय योजना की व्यय-विधि का निर्णय इस आधार पर हुआ है कि प्रतिवर्ष हमारी राष्ट्रीय आय का कितना भाग बचाया जा सकता है। निकट भूतकालीन अनुभव के अनुसार राष्ट्रीय बचत लगभग ७% रही है जबकि विकसित देशो मे यह ११, १२ और १३ प्रतिशत पहुँची है। अत अपनी बचत का प्रतिशत ९ रखा गया और इस आधार पर पाँच वर्ष मे उपलब्धि होने वाली निधि का निर्णय ५,६०० करोड रुपये पर किया गया। इस आँकडे की व्यावहारिकता के सम्बन्ध मे योजना आयोग तथा वित्त मन्त्रालय से परामर्श कर लिया गया था, सन् १९५६ की राष्ट्रीय आय १,०८०° करोड रुपये कूती गई थी और प्रति वर्ष ५% की वृद्धि राष्ट्रीय आय मे मानी गई है। अत सन् १९५६-६१ मे कुल बचत निम्नाकित होनी चाहिए—

$$\frac{९}{१००}\left(१०८०० + १०८०० \; १\;०५ + १०८०० \; १\;०५^{२} + १०८०० \; १\;०५^{४}\right)$$

$$= ९७२\,\frac{(१\cdot०५)^{५} - १}{१\cdot०५ - १}$$

$$= १९४४० \; (\;०२७६३)$$

$$= ५३७१ \text{ करोड रपये}$$

यह ५६०० करोड रुपये से २२९ करोड रुपये कम है। साख्यिकिज्ञ योजना आयोग तथा वित्त मन्त्रालय ने २२९ करोड रुपये की यह वृद्धि क्यों थी (की)? जनता इस बात का उत्तर जानना चाहेगी।

यह सम्भव है कि यद्यपि साख्यिकिज्ञो ने ९% बचत की बात की है, उन्होने पचवर्षीय विनियोग की रकम किसी अन्य ढग से निकाली हो। प्रो० महालनवीस ने एक स्थान पर कहा है कि उन्होने सभी उद्योग की आय-विनियोग अनुपात अर्थात् उत्पादन-पूंजी अनुपात को ० ५ माना है। तब हम कह सकते हैं कि आवश्यक पूँजी विनियोग तथा राष्ट्रीय आय-वृद्धि का अनुपात १०/५ अर्थात् २ होना चाहिए। अन्य

शब्दो मे पंचवर्षीय पूँजी-विनियोग राष्ट्रीय आय-वृद्धि के आयोजित ध्येय का दुगुना होगा। ५% प्रति वर्ष की वृद्धि के आधार पर पाँच वर्ष के अन्त मे राष्ट्रीय आय-वृद्धि निम्नाकित होगी—

$$१०८०० \ (१+०\cdot०५)^{५} - १०८००$$
$$= १०८०० \ (१\ ०५^{५} - १)$$
$$= १०८०० \ (\ ०२७६३)$$
$$= २९८४ \text{ करोड रुपये}$$

अत पचवर्षीय विनियोग की रकम ५९६८ करोड रुपये होनी चाहिए। यह अधिक सम्भव है कि योजना आयोग तथा वित्त मन्त्रालय ने इसका विरोध किया हो और साख्यिकिज्ञ ने निधि को घटाकर ५६०० करोड कर लिया हो।

इस सम्बन्ध में यह भी ज्ञातव्य है कि ५९६८ करोड रुपये का यह पचवर्षीय विनियोग सरकारी और वैयक्तिक दोनों विनियोगों का योग होगा। यह भी ज्ञातव्य है कि उक्त विनियोग के पीछे यह मान्यता निहित है कि १०८०० करोड रुपये की राष्ट्रीय आय हेतु प्रतिवर्ष आवश्यक बचत स्वयमेव होती रहेगी। परन्तु उक्त अनुगणन मे यह बात ध्यान मे नही रखी गई है कि देश की जनसख्या भी बढ रही है। अत हम नीचे आय वृद्धि तथा जनसख्या-वृद्धि दोनो को ध्यान मे रखकर कुछ पचवर्षीय विनियोग को समझने की चेष्टा करेंगे।

मान लीजिये कि प्रति व्यक्ति आय मे ५ वार्षिक वृद्धि करना चाहिए। यह भी मान लीजिये हमारी जनसख्या १ ४% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। जनसख्या की वृद्धि की यह दर अनुचित नही कही जा सकती है। यदि सन् १९५६ की जनसख्या 'ज' हो तो सन् १९६१ की जनसख्या ज $(१+०\cdot०१४)^{५}$ होगी। यदि राष्ट्रीय आय "य" मे य' की वृद्धि होती है तो सन् १९६१ मे कुल राष्ट्रीय आय य+य' होगी। अत प्रति व्यक्ति आय निम्नाकित होगी—

$$\frac{य + य'}{ज(१\ ०१४)^{५}}$$

यहाँ सन् १९५६ मे राष्ट्रीय आय 'य' है और जनसख्या 'ज', अत प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय $\frac{य}{ज}$ हुई। यदि इसमे प्रतिवर्ष ५% की वृद्धि हो तो १९६१ मे यह निम्नलिखित होगी—

$$\frac{य}{ज}(१\ ०५)^{५}$$

अत हम कह सकते हैं कि :—

$$\frac{य+य'}{ज\ १\ ०१४^{५}} = \frac{य}{ज}\ १\cdot०५^{५}$$

अथवा $य' = य\ [१\cdot०५^{५}\ १\cdot०१४^{५} - १]$

यदि हम प्रो० महालनवीस की मान्यतानुसार उत्पादन-पूंजी अनुपात ०·५ मान लें, तो पचवर्षीय पूंजी विनियोग की निधि य' की दुगुनी होगी—

क=२ य'=२ य [१.०५^{५} १ ०१४^{५}—१]

=२१६०० [१ ०६४७^{५}—१]=७६७०

अत पॉच वर्ष मे ७६७० करोड रुपये का विनियोग आवश्यक होगा। यह सम्भव है कि योजना आयोग और वित्त-मन्त्रालय ने इसको यथार्थ बनाना असम्भव माना हो और इसको कम करके ७२०० करोड रुपये कर दिया हो जिनमे से ४८०० करोड रुपये सरकारी ढग पर तथा २४०० वैयक्तिक ढग पर विनियुक्त किये जायेगे।

इसी प्रकार यदि तृतीय पंचवर्षीय योजना मे भी प्रतिवर्ष ५% से वैयक्तिक आय बढाना हो और जनसख्या-वृद्धि की दर २% मान ले तो १३००० करोड रुपए की राष्ट्रीय आय आरभ करके हम आवश्यक विनियोग का अनुगणन कर सकते है—

क=२ १३००० [१ ०५^{५}—१ ०२^{५}—१]=१०६६० करोड रुपए

यदि राष्ट्रीय आय को ही ५%वार्षिक बढाना हो तो क=७१७४ करोड रुपए।

साख्यिकीय-विशेषज्ञो ने तथा भारत सरकार ने तृतीय योजना के आधारा-कृतियो के सम्बन्ध मे स्पष्ट कुछ नही कहा है। प्रो० महालनवीस द्वारा लिखित "सख्या मे प्रकाशित लेख ही अन्तिम प्राप्त सूत्र है। योजना आधाराकृतियो का विचार योजना आयोग और वित्त मन्त्रालय इतना नही कर सकते जितना साख्यिकी के ज्ञाता। जब [illegible] को ध्यान मे रख कर विनियोग सम्बन्धी कुछ अनुमानित आँकडे योजनाकारो, वित्त मन्त्रालय के अधिकारियो और अर्थशास्त्रियो के सामने रखे जाते है तो वे इन बातो पर अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार करते है। वे यह मान लेते है कि [illegible] के अनुगणन ठीक है। उपर्युक्त अनुगणन की गलतियो का विशेष प्रभाव नही पडेगा यदि सरकार जनता की अवस्था देखकर अपने आय-व्यय प्रति वर्ष निश्चित करे। प्रधान मंत्री इसी कारण योजना के कार्यान्वीकरण को लोचशील (Flexibility) रखने की बात को महत्त्व देते हैं। किसी वर्ष मे कितना व्यय योजनाओ पर करना है यह परिस्थिति देखकर निश्चित करना सदा सम्भव तथा वाछनीय नही है। इसमे राष्ट्रीय साधनो का दुरुपयोग और अपव्यय की सम्भावना रहती है। यदि रिहड बॉध को आधा बना कर रोक देना और पुन अगले वर्ष उसे चालू करना पडे तो श्रम, धन, माल की कितनी हानि होगी और बेकारी का कितना विषम रूप होगा, यह सोचना आसान है। अत आरम्भ से ही अनुगणनो की उपयुक्तता (Appropriateness) को बनाये रखना चाहिए।

अन्त मे योजना आधाराकृतियो मे एक प्रतिबन्ध की ओर ध्यान नही दिया गया है। योजना के कारण जो १ ५ करोड अतिरिक्त व्यक्ति काम पायेगे उनके तथा उनके परिवार वालो के लिये उपभोग वस्तुएँ पर्याप्त रूप मे उपलब्ध होगी या नही। इस लेख के आरम्भ मे चार उद्योग-क्षेत्रो का उल्लेख किया गया है। कृषि तीसरे क्षेत्र मे आती है। तीसरे क्षेत्र के अन्तर्गत जो अधिक खाद्योत्पादक प्रतिवर्ष होगा वह प्रतिवर्ष की बढती हुई माँग के अनुरूप होगा यह निश्चित नही है। इसका एक छोटा सा तर्क यो है। खाद्योत्पादक और इन नवीन काम पाने वालो मे अन्तर है। यह नही कहा जा सकता कि खाद्योत्पादन करने वालो के परिवारो के सदस्य ही नए काम पाएँगे। जहाँ तक नए कार्य नगरो के निकट चालू होगे नगर और

उसके आस-पास के रहने वाले ही काम पहले पाएँगे। अत ग्रामीण परिवारो मे जो अधिक खाद्योत्पादन होगा वह नगरो तक पहुँचाना पडेगा। सरकार ग्रामीण क्षेत्रो से अनाज खरीदकर नगरो मे लाने की कोई व्यवस्था नही कर रही है। अत: अधिक अन्न पहले ग्रामीण उत्पादको के परिवार के सदस्यो के (जो पूरा पेट खाना नही पाते है) पेट मे चला जाएगा। फलत नगरो मे उपभोग पदार्थो की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक होगी और वस्तुओ के मूल्य बढेगे। यह मूल्य-वृद्धि योजना व्यय पर कुप्रभाव डालेगी। इस भार को कम करने के लिये ग्रामो मे कृषि-वस्तु मे लगान लेने की प्रथा चालू की जा सकती है: लगान भी बढाया जा सकता है। सिंचाई का मूल्य बढाया जा सकता है। निम्न वर्ग का त्याग-भार बढाने के लिये तथा बाजार में माँग-वृद्धि कम करने के लिये श्रमिको को एक सीमा तक "भावी वेतन पत्र" तथा "वस्तु" मे वेतन दिया जाए।

योजना हेतु आय का प्रक्षेपण करने के कैसे प्रयत्न किये गये है यह प्रकाशित नही किया गया है। ऊपर की आधाराकृतियो मे प्रतिवर्ष (या प्रति व्यक्ति) ५% की वृद्धि का आधार मान लिया गया है। परन्तु आय, उपभोग, विनियोग के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर कुछ प्रक्षेपण किये जा सकते है। क्योकि ऐसे अध्ययन का उल्लेख यहाँ समीचीन है, अत उसका नीचे विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

भावी राष्ट्रीय आय प्रक्षेपण

पूर्वोक्त अर्थशास्त्रीय मॉडलो की सहायता से राष्ट्रीय आय की वृद्धि तथा बचत-विनियोग सतुलन पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। हैरड मॉडल के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं —

(१) $\because$ आय=उपभोग+विनियोग

$$\therefore य_{क} = ब\, य_{क} + अ\, (य_{क} - य_{क-१})$$

$$अथवा,\ (१ - अ - ब)\, य_{क} = अ\, य_{क-१}$$

$$अथवा,\quad य_{क} = \frac{अ}{(अ+ब)-१}\, य_{क-१}$$

(२) यदि उपभोग=स $य_{क-१}$ और

$$विनियोग = अ\, (य_{क} - य_{क-१}),\ तो$$

$$य_{क} = स\, य_{क-१} + अ\, (य_{क} - य_{क-१})$$

$$अथवा\quad य_{क} = \frac{स-अ}{१-अ}\, य_{क-१}$$

(३) यदि उपभोग = स $य_{क-१}$ और

$$विनियोग = ब\, (य_{क-१} - य_{क-२}),\ तो$$

$$य_{क} = स\, य_{क-१} + ब\,(य_{क-१} - य_{क-२})$$

$$\text{अथवा, } य_{क} = (स+ब)\, य_{क-१} - ब\, य_{क-२}$$

आय सम्बन्धी इन तीन सम्बन्ध-समीकरणो मे से प्रथम दो मे आय केवल पिछली आय पर निर्भर है परन्तु तीसरी मे पिछली दो आये वर्तमान आय को निर्धारित करती है।

यदि हम यह मान ले कि उपभोग आय का अश ही हो सकता है तो हम कह सकते है कि अवश्य 'ब' १ से कम है अर्थात् ब—१ ऋणात्मक है। फलस्वरूप अ—(अ+ब)$^{-१}$ का मान '१' से अधिक होगा और आय के पहले समीकरण मे आय-वृद्धि की समान आनुपातिक वृद्धि मानी जा सकती है।

दूसरे आय-समीकरण मे भी यह मानना स्वाभाविक है कि स $<$ १ है। अतः यदि अ $>$ १ है, तो (स—अ)—(१—अ) का मान १ से अधिक होगा और आय की वृद्धि-स्थिति पिछले पैरा की उक्ति के समान ही होगी। यह ज्ञातव्य है कि 'अ' का मान '१' क्या, '२' से भी अधिक होता है।

तीसरे आय समीकरण मे यदि हम यह मान ले कि $य_{क-१} > य_{क-२}$ तो भी यह निश्चय नही है कि $(स+ब)\, य_{क-१} - ब\,(य_{क-२})$ का मान $य_{क-१}$ से अधिक होगा। इस स्थिति मे निरन्तर आय-वृद्धि अनिवार्य नही है।

उदाहरणार्थ, स्थिर भाव (Constant 1948-49 prices) के भारत सम्बन्धी राष्ट्रीय आय अरब रुपए मे निम्नाकित है .—

वर्ष	$य_{क}$	$य_{क-१}$	$य_{क-२}$
१९४९-५०	८८ २	८६ ५	—
१९५०-५१	८८ ५	८८ २	८६ ५
१९५१-५२	९१ ०	८८ ५	८८ २
१९५२-५३	९४·६	९१·०	८८ ५
१९५३-५४	१०० ३	९४ ६	९१·०
१९५४-५५	१०२ ८	१०० ३	९४ ६
१९५५-५६	१०४·८	१०२ ८	१००·३
१९५६-५७	११० ०	१०४ ८	१०२ ८
१९५७-५८	१०८·३	११० ०	१०४ ८
१९५८-५९	११५ ७	१०८ ३	११०·०
		९७५ ०	

उपर्युक्त आँकडो पर आधारित समीकरण निम्नांकित निकलते है—

$$(य_{क}\ १००) = १·६ + ०·७२\,(य_{क-१} - ९७·५)$$

$$(य_{क} - १००) = १ ६०८ + ० १०२ (य_{क-१} - १००) +$$
$$० ६२२ (य_{क-२} - ९६ ३)$$

दूसरे सम्बन्ध से ज्ञात होता है कि वर्तमान आय पर पिछले वर्ष की अपेक्षा दो वर्ष पहले की आय का अधिक प्रभाव पडता है। इस दूसरे सम्बन्ध का सरल रूप है—

$$य_{क} = २ ६१६ + ० १०२ य_{क-१} + ० ६२२ य_{क-२}$$

जिसका विवेचक (Discriminant)

$$(० १०२)^{२} - ४(२ ६१६) (० ६२२)$$

ऋणात्मक है। फलत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय आय चक्रीय (Oscillatory) है।

यह ज्ञातव्य है कि हम इस दूसरे (अन्तिम आय-मॉडल का अनुगणन दूसरी भाँति कर सकते थे। हम पहले

$$उपभोग = स\ य_{क-१}$$

से 'स' का मान ज्ञात कर लेते। फिर

$$विनियोग \times ब\ (उपभोग_{क-१} - उपभोग_{क-१}$$

से ब' का मान अनुगणन कर लेते और तब लिखते कि

$$य_{क} = स\ (१ + ब)\ य_{क-१} + स\ ब\ य_{क-२}$$

तत्हेतु राष्ट्रीय उपभोग तथा वास्तविक पूँजी-विनियोग के आँकडों की आवश्यकता पडेगी जो अभी उपलब्ध नही है।

यह भी ज्ञातव्थ है कि राष्ट्रीय आय को काल (=समय) के फक्शन स्वरूप रखा जा सकता है, यथा—

$$य = ग + घक$$
$$य = ग + घ\ क + च\ क^{२}$$

इन दोनो सम्वन्धो का निहित सैद्धान्तिक अर्थ क्रमश निम्नलिखित होता है—

$$य_{क} = य_{क-१} - य_{क-२}$$
$$य_{क} = ३य_{क-१} - ३\ य_{क-२} + य_{क-३}$$

उपलब्ध ग्यारह वर्षों के राष्ट्रीय आँकडो के आधार पर और निम्नतम वर्ग विधि के द्वारा निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होतें है —

$$य = ९९ १५ + २ ९७ (क - १९५३ ५)$$
$$य = ९८ ४६ + २\cdot९७ (क - १९५३ ५) + ०\cdot०७ (क - १९५३ ५)^{२}$$

इन समीकरणो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काल की दूसरी घात का प्रभाव नगन्प्राय है।

इन उपर्युक्त समीकरणो के आधार पर भावी भारतीय राष्ट्रीय आय अनुगणित की जा सकती है। नीचे द्विघातीय स्वनिर्भर आयश्रित तथा दोनो आय-काल समीकरणो से अनुगणित अगले तीन वर्षो की आय दिखाई गई है—

वर्ष	आय-श्रित	आय-कालश्रित	
		एक घात	द्विघात
१९५९-६०	११५·६	१२७	१२८ ८
१९६०-६१	१२२ ४	११९ ९	१२२·७
१९६१-६२	१२३ ०	१२२ ९	१२६ ७

फिर भी यह ज्ञातव्य है कि स्वनिर्भर आयश्रित (autoregressive income equation) के गुणको तथा सैद्धान्तिक गुणको मे भाम्य नही बैठता है। सैद्धान्तिक रूप से समीकरण है—

$$य_{क} = स\ (१+ब)\ य_{क-१} + स\ ब\ (य_{क-२})$$

अनुगणित समीकरण है—

$$य_{क} = २\ ९१९ + ०\ १०२\ य_{क-१} + ०\ ९२२\ य_{क-२}$$

अत यह कहना चाहिए कि

$$स\ (१+ब) = ०\ १०२$$

$$स\ ब = ०\ ९२२$$

$$इसलिए\quad ब = -\frac{०\ ९२२}{८१०} = -१\ १$$

$$स = -\ ८४$$

'स' तथा 'ब' के ऋणात्मक चिह्न इनके सैद्धान्तिक चिह्न से मेल नही खाते परन्तु जहाॅ तक आंकिक मान का सम्बन्ध है यह ज्ञातव्य है कि सन् १९५३ की भारतीय विज्ञान काँग्रेस मे प्रस्तुत एक शोध-लेख के अनुसार स और ब क्रमश ० ९७ तथा ३ १६ थे। उन अंको के अनुगणन के पीछे केवल दो वर्षो के आय सम्बन्धी आँकडे थे।

प्रसगवश यह भी बताया जा सकता है कि आय प्राक्कलन की तीन भिन्न विधियाँ मुख्यतः उल्लेखनीय है—

(१) कल्पनाप्रधान भावी आय-प्रक्षेपण, जिसके अतर्गत प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को स्थिर या स्थित गति से परिवर्तित होने वाली अथवा अन्य लक्षणो के युक्त मान लेते है। इसमे अनेक चरो (Variables) का ध्यान रखना साध्य हो उठता है जब कि गणितीय समीकरणो में अनेको चरो के कारण समीकरणो का हल निकालना जटिल होता है। इस विधि का मुख्य दोष भी इसकी सरलता तथा इस पर शोधक के विचारो का विशेष प्रभाव है।

(२) आय को बाह्य-निर्धारित (enxogenous) चरो से (तथा अयोजित विनियोग, जनसख्या आदि) सम्बन्धित करना।

(३) अन्तर-निर्धारित (exnogenous) चरो के आधार पर ही आय-मॉडल निर्मित करना।

साधारणतया (विशेषत अर्थ विकसित देशो मे) प्रथम विधि का अधिक उपयोग किया जाता है। हाँ, उस सामाजिक लेखा (Social accounting) जनित रूप-सम्बन्धो (Structural relations) के आआर पर अनुगणन मे कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये जाते है। परन्तु हमारा उपरोक्त उदाहरण तीसरे वर्ग का है।

अध्याय ६

व्यवहारिक अर्थशास्त्रीय मॉडल

आर्थिक व्यवस्था को समझने-समझाने की दृष्टि से कुछ चुने हुए आर्थिक चरो के सम्बन्ध-पुज को अर्थशास्त्रीय मॉडल कहते है । ये सम्बन्ध ऐकिक भी हो सकते है और वक्रीय भी । नीचे दोनो के उदाहरण[1] दिये गए है—

ऐकिक मॉडल

$$\text{माँग} = \text{अ} + \text{ब. मूल्य}$$
$$\text{पूर्ति} = \text{स} + \text{द. मूल्य}$$
$$\text{माँग} = \text{पूर्ति}$$

वक्रीय मॉडल

$$\text{मॉग} = \text{अ} + \text{ब मूल्य} + \text{स मूल्य}^2$$
$$\text{पूर्ति} = \text{द} + \text{क मूल्य} + \text{ख मूल्य}^2$$
$$\text{मॉग} = \text{पूर्ति}$$

व्यवहार मे साख्यिकिज्ञ द्वारा एकत्र किये ऑकडो के आधार पर हम उपरोक्त मॉडलो के प्रथम दो समीकरणो के मान (अ, ब, स, द, क, ख) का अनुगणन साख्यिकीय सिद्धान्तो के आधार पर कर सकते हैं ।

क्योकि मॉग, पूर्ति तथा मूल्य ऋणात्मक नही हो सकते, उपरोक्त समीकरणो के आधार पर अ, ब, स, द आदि के चिह्नो (+ या —) का कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । यथा, क्योकि मॉग पूर्ति के बराबर होगी,

$$\text{अ} + \text{ब मूल्य} = \text{स} + \text{द. मूल्य}$$
$$\therefore \text{मूल्य} = \frac{\text{अ} - \text{स}}{\text{द} - \text{ब}}$$

क्योकि मूल्य-वृद्धि के साथ मॉग कम होती है और पूर्ति अधिक होती है, 'ब' ऋणात्मक तथा 'द' धनात्मक होगा । अत मूल्य को सदैव धनात्मक बनाए रखने के लिये $\frac{\text{अ} - \text{स}}{\text{द} - \text{ब}}$ धनात्मक होना चाहिए अर्थात् स की अपेक्षा अ अधिक होना चाहिए । क्योकि मूल्य शून्य होने पर मॉग धनात्मक और क्योकि एक निम्नतम मूल्य तक पूर्ति सामान्तया शून्य होती है, अत हम कह सकते है कि अ धनात्मक तथा 'स' सम्भवत ऋणात्मक होता हैं । इस प्रकार हम अर्थशास्त्रीय मॉडल के समीकरण और उनके अचलो (parameters or constants) के चिह्न तथा आपसी असमानता-सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

---

१ ये उदाहरण विपणन-मॉडल के उदाहरण कहे जाते है ।

(१) माँग=अ+ब मूल्य+स . जनसख्या
पूर्ति=द+क मूल्य
माँग=पूर्ति

(२) माँग=अ+ब मूल्य
पूर्ति=स+द मूल्य+क वर्षा
माँग=पूर्ति

यहाँ जनसख्या तथा वर्षा अतिरिक्त चर है। इन्हे "बाह्य निर्णीत चर" (exogenous variables) कहते है क्योकि ऐसा माना जाता है कि इन पर माँग, पूर्ति एव मूल्य का कोई प्रभाव नही पडता है। अर्थशास्त्रीय मॉडल मे ऐसे बाह्य निर्णीत चरो की सख्या की कोई सीमा नही है। सर्वथा उपयुक्त मॉडल मे सभी सम्बन्धित अन्तर्निर्णीत (en-dogenous, यथा, मूल्य, माँग तथा पूर्ति) तथा बाह्य-निर्णीत चरो को स्थान मिलना चाहिए। परिस्थिति, सुविधा आदि विचारो के कारण कभी-कभी कुछ चरो का ध्यान छोड देना पडता है ऐसे मॉडल "आंशिक सस्थिति" मॉडल (partial equilibrium model) कहे जा सकते है। परिस्थिति तथा सुविधावश ही कभी-कभी अन्तर्निणीत चर को बाह्य-निर्णीत चर करार दिया जाता है।

जब किसी अर्थशास्त्रीय मॉडल के समीकरणो की सख्या अन्तर्निर्णीत चरो की सख्या से अधिक होती है तब मॉडल अति-निर्णीत (over-determined) कहा जा सकता है क्योकि पूर्ण-निर्णय के लिए समीकरणो की सख्या अन्तर्निर्णीत चरो की सख्या के बराबर होना चाहिए। समीकरणी की सख्या अन्तर्निर्णीत चरो की सख्या से कम हो तो अर्थशास्त्रीय मॉडल को न्यून-निर्णीत कह सकते है।

अर्थशास्त्रीय मॉडल के कुछ समीकरण गणितात्मक समानता दर्शाते है। यथा,

आय=व्यय+बचत

ऐसे समीकरण मे किसी सुधार की आवश्यकता नही रहती है। जटिल अर्थशास्त्रीय मॉडल के समीकरणो पर पहले बनाए तीन बन्धनो (शर्तो) को लागू करते समय होने वाली कठिनाई को कम करने के लिए गणितात्मक समानता वाले समीकरण को इस प्रकार लिखते है—

आय≡व्यय+बचत

अर्थात समानता चिह्न मे दो की जगह तीन आडी रेखाएँ खीचते है। गणितात्मक समानतायुक्त अर्थशास्त्रीय मॉडल के दो उदाहरण निम्नलिखित है—

(१) उपभोग=अ+ब आय
आय≡उपभोग+विनियोग+सरकारी घाटा[1]

(२) उपभोग=अ+ब मूल्य+स आय
विनियोग=द लाभ+क आय+ब्याज दर
आय≡उपभोग+विनियोग+सरकारी घाटा[1]

वक्रीय अर्थशास्त्रीय मॉडल

विपणन-मॉडल के क्षत्र ही उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वक्रीय मॉडल का उल्लेख किया जा सकता है—

१. यहाँ घाटा का अर्थ है आय से व्यय की अधिकता।

मॉग = अ + ब मूल्य + स मूल्य^{२}
पूर्ति = द + क मूल्य
मॉग = पूर्ति

अर्थशास्त्रीय मॉडल मे केवल पहला समीकरण माँग और मूल्य के मध्य वक्रीय सम्बन्ध की कल्पना करता है। इस परिवर्तन के कारण समीकरण के एक से अधिक (multiple) और कभी-कभी काल्पनिक (imaginary) हल निकल सकते है। उपरोक्त मॉडल मे

$$\text{द} + \text{क मूल्य} = \text{अ} + \text{ब मूल्य} + \text{स मूल्य}^{२}$$

अथवा $$\text{स मूल्य}^{२} + (\text{ब} - \text{क})\ \text{मूल्य} + (\text{अ} - \text{द}) = ०$$

अथवा $$\text{मूल्य} = \frac{(\text{क} - \text{ब}) \pm \left[(\text{ब} - \text{क})^{२} - ४\text{स}(\text{अ} - \text{द})\right]^{\frac{१}{२}}}{२\ \text{स}}$$

स्पष्ट है कि मूल्य के दो हल हैं तथा यदि

$$(\text{ब} - \text{क})^{२} - ४\ \text{स}\ (\text{अ} - \text{द})$$

ऋणात्मक हो तो मूल्य के हल काल्पनिक होगे जिसका सकेत होगा कि या तो अर्थशास्त्रीय मॉडल के सूत्रो का ढॉचा (structure) अनुपयुक्त है या कुछ महत्त्वपूर्ण चर (variables) छूट गये हैं।

वक्रीय मॉडल का निहित तात्पर्य यह है कि कुछ समीकरण वक्रीय सम्बन्ध दर्शाते हैं। परन्तु यह आवश्यक नही है कि सभी वक्रीय मॉडल के एक से अधिक हल हो। यथा, यदि हम मॉग-सम्बन्ध को

$$\text{मॉग} = \text{अ} + \frac{\text{ब}}{\text{मूल्य}}$$

और $$\text{मॉग} = \text{अ} + \text{ब Log मूल्य}$$

लिखे, तो यदि $\frac{१}{\text{मूल्य}}$ = य और Log मूल्य = र लिख दे तो उपरोक्त सम्बन्ध ऐकिक बन जाएँगे—

माँग = अ + बय
माँग = अ + बर

लेकिन ऐसा सदैव सम्भव नही है। यदि हम निम्नलिखित अर्थशास्त्रीय मॉडल ले

मुद्रा की मात्रा = अ. आय
पूँजी की मॉग = ब + स ब्याज-दर + द ब्याज-दर^{२}
पूँजी की पूर्ति = क + ख ब्याज-दर + ग ब्याज-दर^{२} + घ आय + च.आय^{२}

तो एक से अधिक हल निकलेगे। इसी मॉडल को सक्षेप मे यो भी लिख सकते है[१]—

(१) मूद्रा = अ. आय
पूँजी-माँग = f (ब्याज-दर)
पूँजी-पूर्ति = φ (ब्याज-दर, आय)

१ इनमें से पहला मॉडल क्लासिकल मॉडल कहलाता है, दूसरा- हिक्सीय सामान्य मॉडल और तीसरा केन्सीय मॉडल। पहले दोनों मॉडल भी हिक्स द्वारा ही इन गणितात्मक रूपों में रखे गए थे।

अथवा, (२) मुद्रा $=\psi$ (ब्याज-दर, आय)

पूँजी-माँग $=f$ (ब्याज-दर, आय)

पूँजी-पूर्ति $=\varphi$ (ब्याज-दर, आय)

अथवा, (३) मुद्रा $=\psi$ (ब्याज-दर, आय)

पूँजी-माँग $=f$ (ब्याज-दर, आय)

पूँजी-पूर्ति $=\varphi$ (आय)

हिक्स ने इन तीन माँडलो के साथ चार अन्य समीकरण जोड देने के विचार को प्रतिपादित किया था—

विनियोग = (मजदूरी) (निर्माण वस्तु उत्पादन) (प्रति उत्पादन सीमान्त श्रम)

निर्माण वस्तु उत्पादन $=g_{१}$ (निर्माण-वस्तु हेतु लगा श्रम)

उपभोग वस्तु उत्पादन $=g_{२}$ (उपभाग वस्तु हेतु लगा श्रम)

विनियोग = (मजदूरी) (निर्माण-वस्तु उत्पादन) (सीमान्त उत्पादन श्रम)

आय = (मजदूरी$_{१}$) (निर्माण वस्तु उत्पादन) (मीमान्त उत्पादन श्रम$_{१}$) +

(मजदूरी$_{२}$) (उपभोग वस्तु उत्पादन) (सीमान्त उत्पादन श्रम$_{२}$)

इस सम्बन्ध मे तीन अन्य वक्रीय मॉडल का उल्लेखन वाछनीय है। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ मे ही प्रोफेसर पिगू ने अपनी पुस्तक "वृत्ति तथा तुलन" (Employment and Equilibrium) मे आठ सूत्रीय मॉडल बनाया है जिसमे एक बाह्य चर है परन्तु यह मॉडल उपयुक्त नही समझा गया है। इसी प्रकार मीड (जे० ई०) ने केन्सीय प्रणाली का एक सरल मॉडल[1] सन् १६३६ मे बनाया था जिसमे नौ समीकरण तथा तीन बाह्य चर थे। मोदिग्लियानी (एफ०) ने भी नौ आन्तरिक चरो तथा एक बाह्य

---

*मीड के समीकरण निम्नांकित थे —

(१) उत्पादन-वस्तु के मूल्य = मजदूरी दर × उत्पादन-वस्तु का सीमान्त श्रम

(२) उपभोग-वस्तु-मूल्य = मजदूरी दर × उपभोग-वस्तु का सीमान्त श्रम

(३) कुल आय = उत्पादन मूल्य × उत्पादन-वस्तु मात्रा + उपभोग मूल्य × उपभोग वस्तु मात्रा

(४) कुल [illegible] री दर × वृत्ति

(५) कुल वृ[illegible]

(६) उपभोग व्यय = उपभोग-वस्तु × उपभोग-वस्तु मूल्य

= (१ — बचत अनुपात) आय

(७) ब्याज-दर = पूँजी की सीमान्त उत्पादकता = $\frac{\text{भावी वार्षिक अनुमानित आय प्रति पूँजी}}{\text{प्रति पूँजी-मूल्य}}$

$\frac{\varphi\ \text{(लाभ)}}{\text{उत्पादन-वस्तु-मूल्य}}$

मीड ने वार्षिक अनुमानित आय को स्थायी माना था अर्थात् उन्होंने यह कल्पना की थी कि प्रतिवर्ष लगाई पूँजी पर एक समान प्रतिफल प्राप्त होगा।

(८) द्रव्य पूर्ति = द्रव्य माँग $=f$ (द्राव्यिक विनिमय मात्रा, ब्याज-दर)

(९) $\frac{\text{कुल पूँजी}}{\text{पडा द्रव्य मात्रा}} = \theta\ \text{(ब्याज-दर)} = \frac{\text{उत्पादन-वस्तु-मूल्य} \times \text{स्थायी पूँजी-स्टाक}}{\text{द्रव्य मात्रा — ख.आय}}$

[आगे भी

चर के आधार पर ग्यारह सूत्र लिखे थे। उन सूत्रो की सहायता से तीन वक्रीय मॉडल और बनाए थे जो हिक्स के उपर्युक्त तीन मॉडलो के समकक्षीय कहे जा सकते हैं इनके नाम स्थूल क्लासिकल मॉडल, केन्सीय मॉडल तथा सामान्य क्लासिकल मॉडल रखें जा सकते है। तीनो मॉडलो के सात सूत्र समान है—

(१) विनियोग, ब्याज-दर एव द्राव्यिक आय द्वारा निर्धारित होता है।

(२) बचत, ब्याज-दर एव द्राव्यिक आय द्वारा निर्धारित होता है।

(३) विनियोग=बचत।

(४) द्राव्यिक आय=मूल्य स्तर × मात्रा देशनाक।

(५) मात्रा (देशनाक) कुल वृत्ति पर निर्भर है।

(६) द्राव्यिक मजदूरी-दर, मूल्य-स्तर एव श्रम की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर होती है।

(७) उपभोग=द्राव्यिक आय—विनियोग।

स्थूल क्लासिकल मॉडल के शेष दो सूत्र ये है—

(अ) द्रव्य मात्रा द्राव्यिक आय के एक स्थायी अनुपात के बराबर है।

(ब) $\text{कुल वृत्ति} = f\left(\dfrac{\text{द्राव्यिक मजदूरी-दर}}{\text{मूल्य-स्तर}}\right)$

केन्सीय मॉडल मे मोदिग्लियानी ने इनके स्थान पर निम्न दो सूत्र लिखे है—

(स) द्रव्य मात्रा, ब्याज-दर तथा द्राव्यिक आय द्वारा निर्धारित होती है।

(द) द्राव्यिक मज़दूरी-दर समान रहती है यदि पूर्ति, वृत्ति की सीमा पर नही हुई है, अन्यथा यह दर मूल्य-स्तर तथा $\dfrac{\text{द्राव्यिक मज़दूरी-दर}}{\text{मूल्य स्तर}}$ द्वारा निर्धारित होती है।

$\dfrac{\text{द्राव्यिक मज़दूरी-दर}}{\text{मूल्य स्तर}}$ के स्थान पर मोदिग्लियानी ने f^{-1}(कुल वृत्ति) लिखा है।

सामान्य क्लासिकल मॉडल मे मोदिग्लियानी ने सूत्र (स) तथा सूत्र (ब) लिये हैं।

मोदिग्लियानी के प्रत्येक मॉडल मे नौ आन्तरिक चर तथा एक बाह्य चर है।

उसके चतुर्थ सूत्र मे दाहिने पक्ष मे मूल्य स्तर तथा उत्पादन दोनो देशनाक के रूप मे आते है। अत एक अचर (Constant) 'ग' से दाहिने पक्ष को गुणा करना आवश्यक है।

पिछले पृष्ठ के पद-टिप्पणी शेशाष]

यहां ख आय का वह अनुपात है जिसे लोग वैत्तिक लेन-देन हेतु तरल रूप मे रखते है।

उपर्युक्त समीकरणों में द्रव्य मात्रा, मजदूरी-दर तथा बचत-अनुपात तीनों बाह्य चर है, स्थायी पूँजी-वस्तु स्टाक (क) तथा (ख) प्रचल (parameter) है और आठ अज्ञात चर है—(१) उत्पादन-वस्तु मात्रा, (२) उपभोग वस्तु मात्रा, (३) [illegible] (४) उपभोग-वस्तु-मूल्य (५) आय, (६) लाभ, (७) ब्याज-दर तथा (८) कुल वृत्ति। मीड ने कुल वृत्ति का सूत्र द्रव्य-मात्रा, मजदूरी-दर तथा बचत-अनुपात के आधार पर निकाला था। मीड के सूत्र की मुख्य मान्यताएँ निम्नांकित थी—

बन्द अर्थ-व्यवस्था, पूर्ण स्पर्धा, दो उद्योग (पूँजीगत वस्तु तथा उपभोग-वस्तु), अल्पकालीन माग की लोच, उत्पादन-वस्तु तथा उपभोग वस्तु की वही है, पूरक लागत केवल मजदूरी के रूप में है, और अल्पकाल में पूँजी वृद्धि नगण्य प्राय है, मूल्य पूरक लागत के बराबर है।

आर्थिक चक्र, आर्थिक उत्पादन, द्राव्यिक सिद्धान्त आदि मे दिलचस्पी रखने वाले अर्थशास्त्री इन अर्थशास्त्रीय मॉडलो के सम्बन्ध मे विचार तथा विवाद करते रहते है परन्तु इन मॉडलो के आधार पर व्यवहारिक जगत् के अध्ययन एव भविष्य-वाणी करने का प्रयास नही किया जाता है। इन गणितात्मक मॉडलो से केवल गुणात्मक पाठ सीखा जाता है। इन सभी मॉडल को स्थैतिक मॉडल कहा जा सकता है क्योकि इनमे समय का प्रभाव किसी प्रकार दृष्टिगोचर नही होता है। विज्ञान के अन्तर्गत कारण करण से पहले आता है अर्थात् कारण का समय-स्थान पहले है।

प्रवैगिक मॉडल

समय को दृष्टि से रखकर विचार करने से पहले यह ध्यान मे रखने की बात है कि आँकडे कुछ समय-अन्तरो पर ही मिलते है यथा, सन् १९४१, १९५१ तथा १९६१ की जनसख्या, अथवा जनवरी, फरवरी, मार्च मास का सूती उत्पादन। अतः जो गणितात्मक सम्बन्ध हों वे इस बात को ध्यान मे रख कर लिखे जाएँ। द्वितीय, उत्पादन या उपभोग सम्बन्धी जो निर्णय लिए जाते है वे कुछ काल बाद ही परिवर्तित किए जाते हैं। अत इन निर्णय प्रभावों को पूर्ण स्थान देने के लिये, चरो के मान निर्णय-परिवर्तन काल के हिसाब से लिये जाने चाहिएँ। यदि प्रत्येक वर्ष के लाभ को देखकर व्यापारी दीपावली के अवसर पर अगले वर्ष की उत्पादन-नीति निर्णय करता है तो उत्पादन सूत्र मे पिछले वर्ष के लाभ का उपयोग करना अधिक उपयुक्त होगा। इन विचारो के कारण दो प्रकार के प्रवैगिक मॉडल लिखे जाते हैं। एक निरन्तर परिवर्तन मान्यता पर चलन-कलन समीकरण (differential equation) के रूप मे, दूसरा अन्तर-समीकरण (difference equation) के रूप मे।

प्रवैगिक विपणन मॉडल

नीचे तीन विपणन-मॉडल[1] उदाहरणार्थ दिये जा रहे है—

(१) $\text{मॉग} = \text{अ} - \text{ब मूल्य} \qquad [\text{ब} > ०]$

$\text{पूर्ति} = \text{स} + \text{द मूल्य} \qquad [\text{द} > ०]$

$$\frac{d\ \text{मूल्य}}{d\ \text{समय}} = \text{क}\ (\text{मॉग} - \text{पूर्ति}) \qquad [\text{क} > ०]$$

यहाँ $\frac{d\ \text{मूल्य}}{d\ \text{समय}}$ समय के साथ मूल्य बदलने की गति का द्योतक है और स्पष्टतया परिवर्तन निरन्तर है क्योकि समय निरन्तर बढता है।

(२) $\text{मॉग} = \text{अ} + \text{ब मूल्य} + \text{स समय}$

$\text{पूर्ति} = \text{क} + \text{ख मूल्य} + \text{ग प्रविधि}$

$\text{मॉग} = \text{पूर्ति}$

(३) $$\text{मॉग} = \text{अ}_० - \text{अ}_१\ \text{मूल्य} + \text{अ}_२ \frac{d\ \text{मूल्य}}{d\ \text{समय}}$$

$$\text{पूर्ति} = \text{ब}_० + \text{ब}_१\ \text{मूल्य} - \text{ब}_२ \frac{d\ \text{मूल्य}}{d\ \text{समय}}$$

$\text{मॉग} = \text{पूर्ति}$

[1] इन तीनों मॉडल को क्रमश ईवेन्स, शुल्ज तथा एलेन् का विपणन मॉडल कह सकते हैं।

पहले मॉडल को हल करने अर्थात् मूल्य, पूर्ति, मॉग आदि को समय के आधार पर ही निर्धारित करने के लिये चलन-कलन की सहायता लेनी पडेगी। कार्य मुश्किल नही है क्योकि मॉग और पूर्ति के निष्काषन (elimination) के पश्चात्

$$\frac{d\,\text{मूल्य}}{d\,\text{समय}} = \text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{मूल्य}$$

अथवा

$$\frac{d\,\text{मूल्य}}{\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{मूल्य}} = d\,\text{समय}$$

अथवा

$$\frac{\log\,[\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{मूल्य}]}{-\text{क}\,(\text{ब}+\text{द})} = \text{समय} + \text{अचर}$$

यदि समयारम्भ पर मूल्य=म$_\circ$ तो हम कह सकते हैं कि

$$\text{अचर} = \frac{\log\,[\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{म}_\circ]}{-\text{क}\,(\text{ब}+\text{द})}$$

$$\log\left[\frac{\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{मूल्य}}{\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{म}_\circ}\right] = -\text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{समय}$$

or $$\frac{\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{मूल्य}}{\text{क}\,(\text{अ}-\text{स}) - \text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{म}_\circ} = e^{-\text{क}\,(\text{ब}+\text{द})\,\text{समय}}$$

यदि म=मूल्य, त=समय

$$\frac{\text{अ}-\text{स}}{\text{ब}+\text{द}} = \text{म}_e \text{ और } -\text{क}\,(\text{ब}+\text{द}) = \gamma, \text{ तो}$$

$$\frac{\text{म}_e - \text{म}}{\text{म}_e - \text{म}_\circ} = e^{\gamma\text{त}}$$

अर्थात् $\text{म} = \text{म}_e - (\text{म}_e - \text{म}_\circ)\,e^{\gamma\text{त}}$

यदि $\gamma < \circ$, तो जब $\text{त} = \infty$, $\text{म} = \text{म}_e$ अर्थात् मूल्य स्थायित्व-प्रवृत्ति रखता है।

दूसरे मॉडल मे मूल्य को समय तथा प्रविधि से ही सम्बन्धित किया है और उसका हल है—

$$(\text{ख}-\text{ब})\,\text{मूल्य} = (\text{अ}-\text{क}) + \text{स}\,\text{समय} - \text{ग}\,\text{प्रविधि}$$

तीसरा मॉडल अल्पकालीन है। इसमे मूल्य-परिवर्तन की गति का प्रभाव माँग और पूर्ति दोनो पर स्पष्ट पडता है। अल्पकाल मे वर्धमान मूल्य के साथ माँग बढती तथा पूर्ति घटती है। यहाँ भी यदि हम मूल्य को म तथा समयारम्भ (अर्थात् त=०) के मूल्य को म$_\circ$ कहे और

$$\text{म}_e = \frac{\text{अ}_\circ - \text{ब}_\circ}{(\text{अ}_१ + \text{ब}_१)} \text{ एव } \gamma = \frac{(\text{अ}_१ + \text{ब}_१)}{(\text{अ}_२ + \text{ब}_२)}$$

तो हम कह सकते है कि

$$(अ_{०}—ब_{०})—(अ_{१}+ब_{१})\ म= \ —(अ_{२}+ब_{२})\frac{d\ म}{d\ त}$$

अथवा $$म—म_{e}=\frac{१}{\gamma}\frac{d\ म}{d\ त}$$

अथवा $$\frac{d\ म}{म—म_{e}}=\gamma\ d\ त$$

$$\log\ (म—म_{e})=\gamma\ त+अचर$$

यदि जब $त=०,\ म=म_{०}$ तो $अचर\ =\log\ (म_{०}—म_{e})$ और

$$\frac{म—म_{e}}{म_{०}—म_{e}}=e^{\gamma\ त}$$

अथवा $$म=म_{e}+(म_{०}—म_{e})\ e^{\gamma\ त}$$

यहाँ यदि $\gamma > ०$ तो $त=\infty$ पर म अनन्त होगा और उद्योग स्थिति अस्थायी (शायद विस्फोटीय) होगी। परन्तु यदि $\gamma > ०$ तो $त=\infty$ पर $म=म_{e}$ अर्थात् म स्थायित्य-प्रवृत्त होगा। ऐसा तब होगा जब $(अ_{२}+ब_{२})$ ऋणात्मक हो अर्थात् यदि $अ_{2}$ (या $ब_{२}$) ऋणात्मक हो और $ब_{२}$ (या $अ_{२}$) से मान मे बढा हो।

प्रवैगिक द्विघातीय मॉडल

अस्तु, उपरोक्त मॉडल से स्पष्ट है कि मूल्य की समय-वद्ध गति स्थायी, एव समय से सीधे अथवा ऐकिक रूप से सम्बन्धित हो सकती है। इसी कल्पना को आगे बढाएँ तो यह सम्बन्ध वक्रीय भी हो सकता है तथा समय के अतिरिक्त अन्य बाह्य चर भी विद्यमान हो सकते है यथा, दूसरे मॉडल मे प्राविधि। यह भी सम्भव है कि "मूल्य-परिवर्तन" की परिवर्तन-गति अर्थात् $\frac{d^{२}\ म}{d\ त^{२}}$ का समय से ऐकिक (स्थायी, सीधा या सामान्य समीकरण रूप से) या वक्रीय सम्बन्ध स्थापित करने की कल्पना की जाए। यह भी सम्भव है कि $\frac{d\ म}{d\ त}$ तथा $\frac{d^{२}\ म}{d\ त^{२}}$ दोनो ही की उपस्थिति हो। यथार्थ मे, द्विघातीय ऐकिक सूत्रीय सम्बन्ध (Second order linear differential equation) का रूप निम्नलिखित है—

$$\frac{d^{२}\ म}{d\ त^{२}}=अ\frac{d\ म}{d\ त}+बम+स$$

नीचे चार समष्टिभावी-अर्थशास्त्रीय मॉडल भी उदाहरणस्वरूप दिये जा रहे हैं—

(१) $\frac{d\ आय}{d\ त}=०$, अ , अ+ ब त , अ. आय

$\frac{d\ ऋण}{d\ त}=स.आय,$ जहाँ त समय है।

यदि आय के स्थान पर $\frac{१}{स} \frac{d\, ऋण}{d\, त}$ लिखे तो पहला सम्बन्ध होगा—

$$\frac{१}{स} \frac{d^२\, ऋण}{d\, त^२} = ०,\ अ,\ अ + ब.त,\ \frac{अ}{स} \frac{d\, ऋण}{d\, त}$$

$$(२)\ व = -अ\,(K - \bar{k}) = -अ\ k$$

जहाँ K=कुल पूँजी , $\bar{k}$=सतुलन मे पूंजी, k= सतुलन की पूंजी की अपेक्षा पूंजी का आधिक्य और व=विनियोग। अर्थात् जब कुलपूंजी $\bar{k}$ से अधिक होती है तो विनियोग ऋणात्मक होता है। तब, क्योकि

$$\frac{d\,K}{d\,त} = व$$

$$और\ \frac{d\,k}{d\,त} = \frac{d\,(K - \bar{k})}{d\,त} = \frac{d\,K}{d\,त} - \frac{d\,\bar{k}}{d\,त} = \frac{d\,K}{d\,त} - ० = व,$$

$$\frac{d\,k}{d\,त} = -अk$$

(३) आय=उपभोग व्यय+विनियोग

$$बचत = विनियोग + अ\left(ब - \frac{d\ उपभोग}{d\ समय}\right)$$

अर्थात्, यदि य =आय , उ=उपभोग व्यय, ब=विनियोग तथा च= बचत, एव त =समय, तो

$$य = उ + व$$

$$\therefore\ \frac{d\,य}{d\,त} = \frac{d\,उ}{d\,त} + \frac{d\,व}{d\,त} = ब + \frac{व - च}{अ} + \frac{d\,व}{d\,त}$$

$$\frac{d^२\,य}{d\,त^२} = \frac{१}{अ}\left(\frac{d\,व}{d\,त} - \frac{d\,च}{d\,त}\right) + \frac{d^२\,व}{d\,त^२}$$

यदि समय के साथ विनियोग की वृद्धि गति $\left(\frac{d\,व}{d\,त}\right)$ समान हो और यदि आ[illegible] के साथ बचत की गति $\left(\frac{d\,च}{d\,य}\right)$ भी समान हो और यदि इन्हे क्रमश β एव γ दर्शाया जाए तो

$$\frac{d^२\,य}{d\,त^२} = \frac{१}{अ}\left(\beta - \gamma \cdot \frac{d\,य}{d\,त}\right)$$

$$(४)\ \frac{d\,व}{d\,त} = -अ\,(K - \bar{k}) = -अk$$

अर्थात् जब कुल पूंजी $\bar{k}$ से अधिक हो उठती है तो विनियोग गति-घट जा[illegible] तब, क्योकि

$$k = K - \bar{k}$$

और इसलिए
$$\frac{d\,k}{d\,त} = \frac{d\,K}{d\,त} - \frac{d\,\bar{k}}{d\,त} = व$$

$$\frac{d}{d\,त}\left(\frac{d\,k}{d\,त}\right) = -अ\,k$$

अथवा $$\frac{d^2 k}{d\,त^2} = -अk$$

अब हम उपरोक्त चारो मॉडल के हल पर प्रकाश डालेगे। पहले मॉडल में सर्वप्रथम आय और समय का सम्बन्ध स्थापित करेगें और तत्पश्चात् ऋण और समय का सम्बन्ध। प्रथम समीकरण मे चार भिन्न परिस्थितियो के विकल्प दर्शाये गए है और इनके हलस्वरूप हम कह सकते है कि

आय = (i) अचर यथा $य_०$

(ii) $अ\,त + अचर = अ.त + य_०$

(iii) $अ\,त + \frac{ब\,त^२}{२} + अचर = अत + \frac{बत^२}{२} + य_०$

(iv) $e^{अत}\,अचर = य_० e^{अत}$

आय के इस स्वरूप को ऋण-आय-समीकरण मे रखने पर हम देखेगे कि

$\frac{d\,ऋण}{d\,त}$ = (i) $स\,य_०$

(ii) $सय_० + असत$

(iii) $सय_० + असत + \frac{बसत^२}{२}$

(iv) $सय_० e^{अत}$

अत ऋण = (i) $सय_०त + अचर = सय_०त + ऋ_०$, जहाँ $त = ०$ होने पर $ऋण = ऋ_०$

(ii) $सय_०त + \frac{अस}{२}त^२ + ऋ_०$

(iii) $सय_०त + \frac{अस}{२}त^२ + \frac{बस}{६}त^२ + ऋ_०$

(iv) $\frac{सय_० e^{अत}}{अ} + ऋ_० - \frac{सय_०}{अ}$

और इसलिये

$\frac{ऋण}{आय}$ = (i) $सत + \frac{ऋ_०}{य_०}$

(ii) $\frac{सय_०त + ५.असत^२ + ऋ_०}{सय_० + असत}$

(iii) $\frac{सय_०त + ५\,असत^२ + \frac{१}{६}\,बसत^३ + ऋ_०}{सय_० + असत + \cdot५\,बसत^२}$

$$(iv)\quad \frac{म}{अ}\left(१-e^{-अत}\right)+\frac{ऋ_०}{य_०}e^{-अत}$$

और अर्थशास्त्री कह सकता है कि केवल चौथी दशा मे समय की वृद्धि के साथ ऋण और आय का अनुपात स्थायित्व-प्रवृत्त होगा स्थायित्व मे यह अनुपात $\frac{सं}{अ}$ होगा। अन्य शब्दो मे स्थायित्व तभी होगा जब आय वृद्धि ज्यामितिक होगी।

दूसरे मॉडल का हल सरलता से लिखा जा सकता है—

$$k = \text{अचर}\ e^{-अत} = k_० e^{-अत} \quad [\text{जहाँ } k=k_० \text{ जब } त=k]$$

अर्थात् दीर्घकाल मे k शून्य-प्रवृत है और कुल पूंजी (K) की प्रवृत्ति $\overline{k}$ की ओर है।

तीसरे मॉडल मे, यदि हम $ग=\frac{d\,य}{d\,त}$ रखे तो

$$\frac{d\,ग}{d\,त}=\frac{१}{अ}(\beta-\gamma\,ग)$$

$$\text{अथवा}\quad \beta-\gamma\,ग = e^{\gamma त\text{-}अ}\ \text{अचर} = e^{-\gamma त\text{-}अ}(\beta-\gamma ग_०)$$

जहाँ त=० होने पर ग का मान $ग_०$ है।

$$\text{अर्थात्,}\quad ग=\frac{\beta}{\gamma}+\left(ग_०-\frac{\beta}{\gamma}\right)e^{-\gamma त\text{-}अ}=\frac{d\,य}{d\,त}$$

$$\therefore\quad य=\frac{\beta}{\gamma}त+\frac{अ}{\gamma}\left(\frac{\beta}{\gamma}-ग_१\right)e^{-\gamma त\text{-}अ}+\text{अचर}$$

$$+\frac{\beta}{\gamma त}+\frac{अ}{\gamma}\left(\frac{\beta}{\gamma}-ग_०\right)\left(e^{\gamma त\text{-}अ}-१\right)$$

जहाँ त=० पर य भी शून्य है।

आय के इस आर्थिक मॉडल मे एक ओर 'त' वृद्धि के साथ $\frac{\beta}{\gamma}$ त के कारण आय बढती है तो दूसरी ओर $e^{\gamma त\text{-}अ}-१$ के कारण वह घटती है।

अन्तर-समीकरण मॉडल

उपर्युक्त उदाहरणो मे समय के साथ आय, विनियोग आदि मे निरन्तर परिवर्तन की कल्पना की गई है। परन्तु जैसा पहले बताया जा चुका है, परिवर्तन की कल्पना पाक्षिक भी हो सकती है। यथा, हम कहे कि (i) इस वर्ष का विनियोग गत वर्ष के लाभ पर निर्भर होगा, (ii) इस वर्ष की जनसख्या गतवर्षीय जनसख्या पर निर्भर है अथवा (iii) इस वर्ष की आय गत दो वर्षों की आय पर निर्भर है। ऐसी स्थिति मे विश्लेषण पक्ष से पक्ष तक होता है। ऐसे विश्लेषण को पक्ष-विश्लेषण कहते है और अगले अध्याय मे इसके अन्य पहलुओ पर विशेष प्रकाश डालेगे।

यहाँ हम इस प्रकार के अर्थशास्त्रीय मॉडल के पाँच उदाहरण दे रहे है। इन्हे कुछ अर्थशास्त्रीय क्रम-मॉडल (sequence model) भी कहते है। निम्नलिखित प्रथम तीनो मॉडल को क्रमश मकर जाल मॉडल (Cobweb model), हैरड माडल (Harrod Model) तथा सेमुएलसन मॉडल कहते है—

(१) $\text{पूर्ति}_{क} = अ + ब\ \text{मूल्य}_{(क-१)}$

$\text{मूल्य}_{क} = स + द\ \text{पूर्ति}_{क}$

प्रारम्भिक पूर्ति $= प_{०}$

यहाँ 'क' काल या समय का संकेत करता है।

यदि हम पूर्ति=प तथा मूल्य को 'म' लिखे तो

$$प_{क} = अ + ब\ म_{क-१}$$

$$म_{क} = स + दप_{क}$$

$$\text{अत}\ प_{क} = अ + ब\ (स + दप_{क-१}) = (अ + बस) + बदप_{क-१}$$

$$= (अ + बस)\ (१ + बद + ब^{२}द^{२} + \quad) + (बद)^{क} प_{०}$$

$$= \frac{अ + बस}{१ - बद} + (बद)^{क} प_{०}$$

बशर्ते बद<१ और 'क' अति अधिक है। तब $प_{क}$ का अन्तिम मान $\frac{अ + बस}{१ - बद}$ होगा।

(२) $\text{बचत}_{क} = अ\ \text{आय}_{क}$

$\text{विनियोग}_{क} = ब\ (\text{आय}_{क} - \text{आय}_{क-१})$

$\text{बचत}_{क} = \text{विनियोग}_{क}$

अर्थात्, बचत आय पर निर्भर है और विनियोग, वर्तमान तथा पिछली आय के अन्तर पर, तथा बचत और विनियोग बराबर है।

यदि बचत=च, विनियोग=व, आय=य और प्रारम्भिक आय=$य_{०}$ तो

$$अ\cdot य_{क} = ब\ (य_{क} - य_{(क-१)})$$

$$\text{अथवा}\ य_{क} = \frac{ब}{ब - अ} य_{क-१} \quad = \left(\frac{ब}{ब - अ}\right)^{क} य_{०}$$

अर्थात् यदि $\frac{ब}{ब - अ}$ का मान −१ तथा १ के बीच है तो $य_{क}$ की प्रवृत्ति शून्य की ओर होगी। यदि मान −१ तथा १ से अधिक है तो $य_{क}$ अनन्त — प्रवृत्त होगा। यदि हम −१ है तो $य_{क}$ स्थायी परन्तु क्रम से ऋणात्मक तथा धनात्मक होता रहेगा। क्योकि बचत आय के बराबर नही होगी, मान कभी १ नही होगा। यदि मान शून्य से कम है तो जैसे-जैसे क=१, २, ३, $य_{क}$ क्रम से ऋणात्मक तथा धनात्मक

होगा और आर्थिक चक्र का उदय होगा।

(३) उपभोग$_{क}$= अ आय$_{क-१}$ अर्थात् बचत$_{क}$= (१ —अ) आय$_{(क-१)}$

विनियोग$_{क}$=ब (उपभोग$_{क}$—उपभोग$_{क-१}$)

=अब (आय$_{क-१}$ —आय$_{क-२}$)

आय$_{क}$=उपभोग$_{क}$+विनियोग$_{क}$ अर्थात् विनियोग=आय-उपभोग= बचत अर्थात् पिछले मॉडल की अपेक्षा यहाँ बचत पिछले पक्ष की आय पर निर्भर है और विनियोग वर्तमान पक्ष की आय-वृद्धि की अपेक्षा पिछले पक्ष को आय-वृद्धि पर निर्भर है। यहाँ अन्तर-समीकरण की घात एक और अधिक हो गई है क्योकि अब

$$आय_{क}=अ(१+ब) \ आय_{क-१} -अब \ आय_{क-२}$$

अथवा $$य_{क}=अ \ (१+ब) \ य_{क-१}- अब \ य_{क-२}$$

ऐसे अन्तर-समीकरण को हल करने का ढग यह है कि मान लेते है कि $य_{क}$ का हल द $x^{क}$ सदृश है जहाँ द अचर है, क समय है तथा x अज्ञात राशि है। $य_{क}$ का कोई विशिष्ट स्थिर हल हो उसका पता $य_{क}$=स मानकर निकालते है जहाँ स कोई अचर मान है। x का मान जानकर $य_{क}$ का सामान्य (General) हल निकलता है और स का मान $य_{क}$ का विशिष्ट हल (Particular solution) कहलाता है।

स्पष्टतया यदि स विशिष्ट हल है तो $य_{क}$, $य_{क-१}$, $य_{क-२}$ सभी स होगे: अत. उपयुक्त समीकरण मे इस हल को रखने से स का मान जान सकते हैं—

$$स=अ \ (१+ब) \ स-अब \ स$$

$$अथवा, \ स[१+अब-अ \ (१+ब)]=०$$

अर्थात् स का मान शून्य है। स्पष्टतया विशिष्ट हल तभी शून्य से विलग (other than zero) निकलेगा जब $य_{क}$ के समीकरण में कोई अचर राशि हो। प्रस्तुत मॉडल ऐसा होता यदि (मान लीजिए)

$$विनियोग_{क}=ब \ (उपभोग_{क}-उपभोग_{क-१}) +ग$$

तब स का मान होता $\frac{ग}{१-अ}$।

अस्तु। सामान्य हल हेतु $य_{क}$ के स्थान पर द $x^{क}$ रखेगे, $य_{क-१}$ के स्थान पर द $x^{क-१}$ और $य_{क-२}$ के स्थान पर द $x^{क-२}$। तब

$$दx^{क}=अ \ (१+ब) \ x^{क-१}-अब \ दx^{क-२}$$

अथवा, $x^२ -$ अ (१+ब) $x +$ अब $= ०$

$\therefore \quad x = \frac{1}{2}\left[\text{अ}(१+\text{ब}) + \sqrt{\text{अ}^२(१+\text{ब})^२ - ४\,\text{अब}}\right]$

यदि x_1 और x_2 को x के दो मान समझ ले तो सामान्यत $\text{य}_\text{क}$ का हल निम्न प्रकार लिखा जाएगा —

$\text{य}_\text{क} = \alpha_1 x_1^\text{क} + \alpha_2 x_2^\text{क}$ जहाँ α_1 तथा α_2 अज्ञात अचर राशि है जिनका पता तभी लग सकता है जब 'क' के किन्ही दो मानो के लिए $\text{य}_\text{क}$ के मान मालूम हो। मान लीजिए $\text{य}_०$ तथा य_1 ज्ञात है। तब हम लिख सकते है कि

$$\text{य}_० = \alpha_1 x_1^० + \alpha_2 x_2^० = \alpha_1 + \alpha_2$$

$$\text{य}_1 = \alpha_1 x_1^1 + \alpha_2 x_2^1 = \alpha_1 x_1 + \alpha_2 x_2$$

इनमे α_1 तथा α_2 ज्ञात हो जाएँगे।

ऊपर हमने x_1 तथा x_2 को निश्चित परन्तु भिन्न माना है। यह भी सम्भव है कि x_1 तथा $x^२$ बराबर है अथवा वे सम्मिश्रसख्या (Complex numbers) है। ऐसा तभी होगा जब अ_2 $(१+\text{ब})_2 - ४$ अब शून्य अथवा ऋणात्मक हो।

यदि $x१$ तथा x_2 बराबर होते है तो य का सामान्य हल लिखा जाएगा—

$$\text{य} = \alpha_1 x^\text{क} + \alpha_2 \text{ क } x^\text{क} = (\alpha_1 + \text{क}\alpha_2) x^\text{क}$$

और α_1 तथा α_2 का मान पूर्व की भाँति $\text{य}_०$ तथा य_1 की सहायता से निकाल लेगे।

यदि x_1 तथा x_2 सम्मिश्र सख्याएँ होती है तो डिमॉग्रवर सिद्धान्त की सहायता से,

$$x_1^\text{क} = (\beta_2 + \gamma_2)^{\text{क}_2} (\text{कोज्या क}\theta + \imath \text{ ज्या क } \theta)$$

$$\text{तथा } x_2^\text{क} = (\beta^२ + \gamma^२)^{२\,\text{क}_2} (\text{कोज्या क } \theta - \imath \text{ ज्या क}\theta)$$

$$\text{जहाँ } \beta = \frac{\text{अ }(१+\text{ब})}{२}, \quad \gamma = \frac{1}{2}\sqrt{-\text{अ}^२ (१+\text{ब})^२ + ४\,\text{अब}},$$

$$\text{स्पज्या } \theta = \frac{\gamma}{\beta}$$

अतः य का सामान्य हल होगा—

$$\text{य}_\text{क} = [(\alpha_1 + \alpha_2) \text{ कोज्या क}\theta + (\alpha_1 - \alpha_2)\imath \text{ ज्या क}\theta] (\beta^२ + \gamma^२)^{\text{क}_2}$$

$$= [(\alpha_1 + \alpha_2) \text{ कोज्या क}\theta + (\alpha_1 - \alpha_2)\, \imath \text{ ज्या क}\alpha]\, (\text{अब})^{\text{क}_{12}}$$

$\text{य}_०$ तथा य_1 की सहायता से α_1 तथा α_2 का मान निकालने के पश्चात् $\text{य}_\text{क}$ का सामान्य हल होगा—

$$\text{य}_\text{क} = (\text{अब})^{\text{क}_2} \left[\text{य}_० \text{ कोज्या क}\theta + \frac{\text{य}_1 - \text{य}_० \beta}{\gamma} \text{ ज्या क}\right]$$

यदि कालान्तर सतुलन आया तो स्पष्टतया आय को शून्य होना पड़ेगा। इस

प्रकार यह कहा जा सकता है कि शून्य आय के स्थान पर धनात्मक आय वाले सतुलन हेतु यह आवश्यक है कि विनियोग समीकरण निम्नाकित हो—

$$\text{विनियोग}_{\text{क}} = \text{ब}\ (\text{उपभोग}_{\text{क}} - \text{उपभोग}_{\text{क}-१}) + \text{ग}$$

तब सतुलन मे $\text{य}_{\text{क}}$ का मान होगा $\frac{\text{ग}}{१-\text{अ}}$ ।

अस्तु, अन्तर-समीकरण के रूप मे अर्थशास्त्रीय मॉडल हो तो हल का रूप सामान्यतया निम्न प्रकार के हो सकते है—

$$(i)\ \delta + \alpha_1 x_1^{\text{क}} + \alpha_2 x_2^{\text{क}} + \alpha_3 x_3^{\text{क}} + \quad + \alpha_{\text{न}} x_{\text{न}}^{\text{क}}$$

$$(ii)\ \delta + x^{\text{क}}\ (\alpha_1 + \alpha_2 \text{क} + \quad \cdot + \alpha_{\text{न}} \text{क}^{\text{न}-१})$$

$$(iii)\ \delta + x^{\text{क}}\ [\alpha_1\ \text{कोज्या}\ (\text{क}\ \theta) + \alpha_2\ \text{ज्या}\ (\text{क}\ \theta)]$$

$$(४)\quad \text{उपभोग}_{\text{क}} = \text{अ} + \text{बय}_{\text{क}-१}$$

$$\text{य}_{\text{क}} = \text{उपभोग}_{\text{क}} + \text{विनियोग}_{\text{क}}$$

यहाँ उपभोग को पिछली आय पर निर्भर माना है। 'ब' का मान १ से कम होगा और उसको ऋणात्मक नही मानते है—क्योकि आय वृद्धि पर उपभोग घटता है; यह असम्भव प्रतीत होता है।

$$(५)\ \text{उपभोग}_{\text{क}} = \text{अ} + \text{ब}[p\ \text{य}_{\text{क}} + q\ \text{य}_{\text{क}-१}]$$

$$\text{य}_{\text{क}} = \text{उपभोग}_{\text{क}} + \text{विनियोग}_{\text{क}}$$

यहाँ उपभोग को औसत आय पर आधारित माना है। $p\ \text{य}_{\text{क}} + q\text{य}_{\text{क}-१}$ औसत आय निकालने का ऐसा सूत्र है जिसमे $p+q=१$। यदि आवश्यक समझा जाय तो $\text{य}_{\text{क}}$ और $\text{य}_{\text{क}-१}$ के अतिरिक्त अन्य पिछली 'आये' भी सम्मिलित की जा सकती है। उससे विश्लेषण विधि पर कोई असर नही पडता।

दोनो मॉडल के विश्लेषण सदृश है। अत हम पहले चतुर्थ माडल का विश्लेषण करेंगे। उनके सूत्रो की सहायता से हम $\text{य}_{\text{क}}$ को पिछली आयो और पिछले विनियोगो के आधार पर अनुगणित कर सकते हैं। हम विनियोग=व लिखेंगे—

$$\begin{aligned}
\text{य}_{\text{क}} &= \text{व}_{\text{क}} + \text{उपभोग}_{\text{क}} \\
&= \text{व}_{\text{क}} + \text{अ} + \text{बय}_{\text{क}-१} \\
&= \text{व}_{\text{क}} + \text{अ} + \text{ब}\ [\text{व}_{\text{क}-१} + \text{अ} + \text{बय}_{\text{क}-२}] \\
&= (\text{अ} + \text{अब}) + (\text{व}_{\text{क}} + \text{बव}_{\text{क}-१}) + \text{ब}^{२}\text{य}_{\text{क}-२} \\
&\quad \cdots\cdots\cdots\cdots \\
&\quad \cdots\cdots\cdots\cdots \\
&= \left(\frac{\text{अ}}{१-\text{ब}} - \frac{\text{अब}^{\text{क}}}{१-\text{ब}}\right) + (\text{व}_{\text{क}} + \text{बव}_{\text{क}-१} + \cdots + \text{ब}^{\text{क}}\text{व}_{१}) + \text{ब}^{\text{क}}\text{य}_{०}
\end{aligned}$$

अथवा $व_क$ को स्थिर (अर्थात् 'व' के बराबर) मान ले तो

$$य_क = व_क + अ + बय_{क-१}$$
$$= व + अ + ब (व + अ + बय_{क-२})$$
$$= (अ + व)(१ + ब) + ब^२ य_{क-२}$$
$$\dots\dots\dots\dots$$
$$\dots\dots\dots\dots$$
$$= (अ + व)(१ + ब + ब^२ + \cdots ब^{क-१}) + ब^क य_०$$
$$= \frac{(अ + व)}{१ - ब} - ब^क \left[\frac{अ + ब}{१ - ब} - य_०\right]$$

यदि सतुलन हुआ तो $ब^क$ को शून्य होना पडेगा अर्थात् सतुलन-आय को $\frac{अ + व}{१ - ब} = \bar{य}$ लिखे तो

$$य_क = \bar{य} - ब^क (\bar{य} - य_०)$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि आय को पिछले सभी विनियोगो के प्रभाव स्वरूप देख सकते है और यदि प्रति पक्ष के ये विनियोग बराबर हो तो आय की सतुलन-आय की ओर होने वाली प्रवृत्ति का विश्लेषण कर सकते है —

$$य_क - \bar{य} = ब^क (\bar{य_०} - य)$$

इससे स्पष्ट है कि यदि क अर्थात् समय बहुत छोटा है अथवा यदि 'ब' बहुत कम है (अर्थात् आय का उपभोग पर बहुत कम प्रभाव पडता है जैसा कि सादा जीवन के अन्तर्गत होगा) तो आय $(य_क)$ की प्रवृत्ति $\bar{य}$ की ओर तीव्र होगी।

यदि किसी पचवर्षीय योजना के अतर्गत विनियोग मे प्रतिवर्ष व् की वृद्धि करे तो उसका आय पर क्या प्रभाव पडेगा यह अनुगणित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि सन् १९५० तक प्रतिवर्ष विनियोग $व_०$ था तो सन् १९५० की राष्ट्रीय आय होगी—

$$य_{१९५०} = \frac{अ + व_०}{१ - ब} + ब^क \left[\frac{अ + व_०}{१ + ब} - य_०\right]$$

क्योकि ब < १ तथा क अनत है, अत., $य_{१९५०} = \frac{अ + व_०}{१ - ब}$

यदि १९५१ से १९५६ तक प्रतिवर्ष विनियोग $व_० + व्$ है अर्थात $व'$ है तो

$$य_{१९५६} = \frac{अ + व'}{१ - ब} - ब^५ \quad \frac{अ + व'}{१ - ब} - \frac{अ + व_०}{१ - ब}$$
$$= \frac{अ + व'}{१ - ब} - \frac{ब^५ (व' - व_०)}{१ - ब}$$

$$= य_{१९५०} + \frac{(व' - व_०)(१ - ब^५)}{१ - ब}$$

$$\therefore \frac{य_{१९५६} - य_{१९५०}}{य_{१९५०}} = \frac{व' - व_०}{अ + व_०}(१ - ब^५) = \frac{व्(१ - ब^५)}{अ + व_०}$$

कभी-कभी अर्थशास्त्रीय मॉडल विश्लेषण अंतर-समीकरण तथा चलन-कलन के लगभग बगैर ही करे जाते है। यथा, यदि उ=उपभोग, व=विनियोग, य= आय तथा स=कुल सम्पत्ति है तो हम कह सकते है कि—

उपभोग=अ+ब आय+द कुल सम्पत्ति

अथवा बचत=आय-उपभोग=—अ+(१—ब) आय—द कुल सम्पत्ति

अर्थात् आय एव कुल सम्पत्ति दोनो का प्रभाव उपभोग को बढाने की दिशा मे होता है। कहा भी गया है कि अधिक सम्पत्ति होने पर बचत की भावना घट जाती है।

इसी प्रकार विनियोग के सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि—

विनियोग$=\alpha+\beta$ आय$-\gamma$ कुल उत्पादन पूंजी

एक सीमा तक कुल सम्पत्ति और कुल उत्पादन पूंजी मे एक समान अंतर माना जा सकता है। अत उपरोक्त सम्बन्ध यो लिखे जा सकते है —

$$उ = अ + बय + दस$$

$$व = \alpha + \beta\, य - \gamma\, स$$

और क्योंकि आय, उपभोग तथा विनियोग के योग के बराबर होती है, हम कह सकते है कि—

$$य = उ + व = (अ + \alpha) + (ब + \beta)\, य + (द + \gamma) स$$

$$\text{अथवा} \quad य = \frac{अ + \alpha}{१ - ब - \beta} + \frac{द - \gamma}{१ - ब - \beta} स$$

$$= \mu + \upsilon\, स$$

$$\therefore व = \alpha + \beta\, (\mu + \upsilon\, स) - \gamma\, स = \alpha + \beta\mu + (\beta\upsilon - \gamma)\, स$$

कुल पूंजी (सम्पत्ति) मे होने वाले परिवर्तन ही तो विनियोग है। अत. सम्पत्ति मे परिवर्तन हुआ—

$$\alpha + \beta\mu + (\beta\upsilon - \gamma)\, स$$

यदि यह परिवर्तन धनात्मक है तो ऊपर जिस आय को कुल सम्पत्ति से सम्बन्धित किया है

$$य = \mu + \upsilon\, स$$

उसमे भी परिवर्तन होगा। आय की स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि कुल पूंजी की परिवर्तन-गति शून्य हो। अत

$$\alpha + \beta\mu + (\beta\upsilon - \gamma)\, स = ०$$

$$\therefore स = \frac{\alpha + \beta\mu}{\gamma - \beta\upsilon}$$

हम इसको सम्पत्ति का सतुलन मान कह सकते है और $\bar{स}$ से इसे दर्शा सकते है।

तब, $$व = \alpha + \beta\mu + (\beta v - \gamma)\, स$$
$$= (\beta v - \gamma)(\underline{स} - \bar{स})$$

यह सम्पत्ति की परिवर्तन गति है। यदि स>स तो इसे धनात्मक होना चाहिए

अर्थात् $$\beta v - \gamma < ०$$

अथवा $$\frac{\beta(द - \gamma)}{१ - ब - \beta} < \gamma$$

अथवा $$\frac{\beta}{१ - ब} < \frac{\gamma}{द}$$

β तथा १—ब आय का विनियोग तथा बचत पर पडने वाले प्रभाव के प्रतीक है। इसी प्रकार $-\gamma$ तथा —द कुल सम्पत्ति का विनियोग तथा बचत पर पडने वाले प्रभाव के प्रतीक है। अत हम कह सकते है कि सतुलन हेतु आय का विनियोग तथा बचत पर पडने वाले प्रभावों का अनुपात कुल सम्पत्ति का इन्हीं पर पडने वाले प्रभावों के अनुपात से कम होना चाहिये।

अर्थशास्त्रीय मॉडल के अर्थमितिक रूप भी है। उनका संक्षिप्त उल्लेख पिछले अध्याय मे किया गया था। सक्षेप मे इसका अर्थ यह रहता है उपरोक्त मॉडल की अचर राशियो को व्यवहारिक जगत् से एकत्रित आँकडो के आधार पर किस प्रकार अनुगणित किया जाए। उदाहरणार्थ, यदि

उपभोग = अ + ब आय

तो यदि सन् १९५६ तथा १९५७ मे उपभोग = ८ तथा ८·१ और आय = १० तथा ११, तो हम लिख सकते है कि—

८ = अ + १० ब

८ १ = अ + ११ ब

ब = ० १, अ = ७

परन्तु यदि बीस वर्षों के आय तथा उपभोग के आँकडे ज्ञात हो तो सभी का उपयोग करके 'अ' तथा 'ब' के उपयुक्त मान कैसे निकाले ? यह समस्या हमको सांख्यिकिज्ञो के क्षेत्र मे ले जाती है और अर्थमिति शीर्षक अध्ययन का यही उदय होता है।

अध्याय १०

पक्ष-विश्लेषण

(Period Analysis)

पक्ष-विश्लेषण तथा अन्य समष्टिभावी-अर्थ-विश्लेषण (macro-economic analysis) का ध्येय अर्थशास्त्रीय विश्लेषण को सरल और मूलाधारीय (Fundamental) बनाना है। भले ही व्यवहार मे ऐसे विश्लेषण का प्रयोग कठिनाइयो और गणितीय जटिलताओ से भरा हो, परन्तु इतना तो आप भी मानेंगे ही कि निम्नलिखित कथन सरल है—

(अ) आज का मूल्य कल के मूल्य द्वारा निश्चित (अथवा, के आधार पर आयोजित) किया जाता है।

(ब) आज की आय का कल की आय और परसो की आय से सकेत मिलता है अर्थात् इन दोनो तथा आज की आय के मध्य कोई सूत्रीय सम्बन्ध है।

इनसे न केवल वर्तमान विचारधारा का सकेत मिलता है] वरन् पक्ष-विश्लेषण को समझना सरल हो जाता है।

त्रि-अर्थशास्त्रीय विश्लेषण

अर्थशास्त्रीय विश्लेषण की तीन प्रणालियाँ उल्लेखनीय है—

(*i*) सस्थिति विश्लेषण।

(*ii*) प्रवैगिक विश्लेषण जिसके अन्तर्गत प्रवैगिक प्रक्रिया (Dynamic Process) सस्थिति-प्रक्रमो (Series of eqiuilibrium positions) के रूप से देखा जाता है।

(*iii*) पक्ष-विश्लेषण जिसके अन्तर्गत योजनाएँ घटना-पूर्वाग्र (ex-ante) अथवा अपेक्षित (expected)[१] मानो (values) तथा पूर्व-घटित (Previous ex-post) मानो के आधार पर बनाई जाती है।

सस्थिति-विश्लेषण अन्तिम-स्थिति का विश्लेषण है जो व्यवहार जगत् मे नही पाई जाती है। अन्तिम-स्थिति स्थैतिक है, और यथार्थता, प्रवैगिक। अत हिक्स ने (देखिए, वैल्यू एड केपिटल) ने प्रवैगिक स्थिति को अल्पकालीन सस्थिति अवस्था के के क्रम (Series) स्वरूप मान कर अपना विश्लेषण प्रतिपादित किया।

हिक्स ने न केवल अल्पकालीन सस्थिति को यथार्थ माना वरन् यह भी कि उसमे तथा यथार्थता मे अप्रत्याशित या गम्भीर अन्तर नही होगा। केन्सीय विश्लेषण के पीछे भी ऐसी मान्यताएँ निहित हैं और लर्नर ने तो यह मत प्रकट किया है कि उक्त अन्तर शायद उस गलती से भी कम होगा जो आँकडो के एकत्र करने की विधि के कारण आँकडो मे होगी।

---

१. Expectation के लिये आशसा और expected के लिये आशसित भी लिख सकते है।

लुदबर्ग (Lundberg) ने उस विश्लेषण की ओर ध्यान दिया जिसे हम पक्ष-विश्लेषण (Period-analysis), प्रविधि-विश्लेषण (Process analysis) या अ-सस्थिति प्रविधि-विश्लेषण (Non-equilibrium process analysis) कहते है। इसके अन्तर्गत किसी अन्तिम सस्थिति की कल्पना नही की जाती है। सम्भव है कि सम्बन्धो (सूत्रो) के कारण सस्थिति सिद्ध हो अथवा न सिद्ध हो।

प्रविधि-विश्लेषण क्यो ?—प्रविधि-विश्लेषण के पक्ष मे दो तर्क दिये जा सकते है—

(अ) उत्पत्तिकर्त्ता पिछले अनुभव (अर्थात् पूर्व-घटित मान, Previous ex-post values) तथा अगले पक्ष (period) सम्बन्धी अनुमान (अर्थात् घटना-पूर्वीय मान) के आधार पर अपनी योजनाएँ बनाते है। एक बार योजना बनाकर वे उसे एक पक्ष (period) तक कार्यान्वित करते है—पक्ष के बीच वे उसे बिरले ही बदलते है। बीच मे योजना बदलना कठिन भी होता है।

(ब) जो आर्थिक आँकडे प्राप्त होते है वे बहुधा किसी क्षण (Point of time) के न होकर पक्ष (period) विशेष के होते है, यथा, मासिक बिक्री, साप्ताहिक आय, वार्षिक कृषि उत्पादन, दैनिक उपभोग, दैनिक ब्याज-दर, मासिक निर्यात और वार्षिक राष्ट्रीय आय।

प्रविधि-विश्लेषण का ढंग—अत. प्रविधि-विश्लेषण उपयुक्त और उचित है। यह यथार्थता के अधिक निकट भी है। इस विश्लेषण का ढग निम्नलिखित प्रकार है।

(अ) प्रारम्भिक दशाओ (conditions at start) तथा बनाई योजनाओ के आधार पर अगले पक्ष के (भावी) बिकास का निष्कर्ष निकालते है। अर्थात् हम घटना-पूर्वीय मानो और घटित-मानो के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि शक्तियाँ किस प्रकार कार्यान्वित होगी।

(ब) घटना-क्रम (अत. भावी पुनर्विचार, revision) के आधारभूत सिद्धान्तो को समझना तथा पिछले पक्ष के (घटित, ex-post) विकास के आधार ज्ञात हो पर सम्भव पुनर्विचार के सम्बन्ध मे खोज करना।

अपेक्षाओ की समस्या—घटना-पूर्वीय मान तथा उत्तर-घटना मान के सम्बन्ध को जान लेने के पश्चात् हम यह अध्ययन करते है कि उत्तर-घटना मान किस प्रकार नवीन अपेक्षाओ (expectations) और योजनाओ पर प्रभाव डालते है। स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि 'अपेक्षाएँ' कैसे सृजित होती है। क्या उनका भी कोई कारण होता है अथवा वे तत्क्षणीय (spontaneous) तथा अतर्प्रेरणा का फल है। व्यवहार मे अर्थशास्त्री अपेक्षाओ के लिये हेतुक सम्बन्ध (causal relations) मानते पाए जाते है। यथा, कभी अपेक्षित मूल्य (expected price) पिछले मूल्य (last price) के बराबर माना जाता है, और कभी उसको अन्तिम (last) मूल्य और उससे पहले (last but one) मूल्य के अन्तर से भी प्रभावित माना जाता है—

$$\text{मूल्य}_{\text{क}} = \text{अ मूल्य}_{\text{क-१}} + \text{ब } (\text{मूल्य}_{\text{क-१}} - \text{मूल्य}_{\text{क-२}})$$

क, क-१ तथा क-२ वर्तमान, अन्तिम और उससे पहले पक्ष के द्योतक है। अ तथा ब

हेतुक सम्बन्ध की अचर राशियाँ (constants) है।

कभी-कभी मूल्य पर सामान्य मूल्य (normal price) का प्रभाव माना जाता है। किसान के मूल्यो को "अपेक्षित उत्तम फसल" और "मदी" द्वारा प्रभावित माना जाता है। विक्रेता के मूल्य-अपेक्षाओ पर "अपेक्षित आयात" और क्रय-शक्ति का प्रभाव माना जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मॉडल निर्माण मे अपेक्षाओ को समझना भी एक समस्या है।

तत्पश्चात् प्रयोजनो (motives) की समस्या उठती है। क्या वे भी कारण-निर्णीत है ? अथवा क्या वे काल-स्थान तथा परिस्थिति से अछूते है ? क्या वे अतर्ज्ञान जनित है ? क्या प्रयोजनो का कोई सिद्धान्त प्रतिपादित किया जा सकता है ? लिंडहाल ने इस प्रश्न की ओर से दृष्टि फेर ली और केवल इतना ही कहा कि योजनाएँ मनुष्य के आर्थिक प्रयोजनो (economic motives) की ऐसी स्पष्ट उक्ति है जो उसके आर्थिक कार्यो मे मूर्त्त हो उठती है।"

अत इन आर्थिक प्रयोजनो का ज्ञान आवश्यक है। लिंडहाल के अनुसार यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भावी आर्थिक कार्यों (actions) को स्पष्ट रूप से समझता है, उसके कार्य ऐसी आदतो और पुनावृ'त प्रवृत्तियो पर आधारित होते हैं जो निश्चित और अनुगणनशील (calculable) है।

इस सम्बन्ध मे एक द्विअर्थी बात उल्लेखनीय है। अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि एक उत्पादक या तो केवल भावी उत्पादन मात्रा निर्णीत करेंगे अथवा भावी मूल्य भी। यदि वे केवल उत्पादन-मात्रा का निर्णय करते है तो यह मानकर कि स्टाक पूर्ववत् रखे जाएँगे, हम कह सकते है कि मूल्य मे ऐसा परिवर्तन होगा कि विक्रय और भावी माँग (effective demand) बराबर होगे। यदि आयोजित मात्रा माँग से कम है तो मूल्य बढेगे। मूल्य-वृद्धि के कारण एक ओर उत्पादक अपने स्टाक घटाएँगे (अर्थात् स्टाक मे से भी कुछ माल बेच देगे, दूसरी ओर कुछ क्रेता खरीदारी नही करेंगे अर्थात् माँग घट जाएगी। अत अधिक मूल्य के कारण ही पूर्ति और माँग मे समता होगी।

यदि मूल्य भी निर्णय कर दिये गए तो विक्रय और प्रभावी माँग के बराबर होने के दो ढग है। प्रथम, जो पहले आए उसे माल मिल जाए और बाद मे आने वाले क्रेता वापस जाएँ। द्वितीय, उत्पादन से माँग जितनी अधिक है उसकी पूर्ति स्टाक से माल बेचकर की जाए। साधारण बुद्धि दोनो मे से किसी स्थिति को सही मानने के लिए तैयार नही हैं। न तो मूल्य अनिर्णीत ही छोडे जाते है और न उन्हे पहले से पूर्णतया निर्णय कर देते हैं। केन्द्रित बहुमात्रिक उत्पादन (centralised mass production) के सम्बन्ध में पहले से मूल्य निश्चित करने की प्रवृत्ति होती है। जहाँ विकेन्द्रित उत्पादन परन्तु केन्द्रित विक्रय होता है वहाँ भी एक सामान्य मूल्य (normal price) की भावना विद्यमान रहती है और उसका माँगे गए मूल्य पर प्रभाव पडता है, यद्यपि शायद उस पर अडा नही जाता है। सभी काल और स्थान के लिये कोई निश्चित समय नही दिया जा सकता है।

कुछ कठिन समस्याएँ—पक्ष-विश्लेषण हेतु एक समस्या "पक्ष"-परिभाषा की उठती है। वह तो सर्वविदित है कि विभिन्न आर्थिक क्रियाओ के पक्ष (period) भिन्न-भिन्न होते है। किसान, मजदूर, निर्माणकर्त्ता के लिये कोई समान पक्ष नही है। अत विश्लेषण हेतु या तो विभिन्न मुख्य पक्षो का भूयिष्ठक (modal value) निकाल ले या यो ही कोई पक्ष चुन ले जो छोटा हो और जिसमे बनाई योजना बदली न जाय। साधारणतया इस दूसरे ढग को अपनाया जाता है।

एक अन्य कठिनाई यह है कि विभिन्न पक्ष कब से (साल के किस समय से) आरम्भ हो और अर्थ-व्यवस्था के भिन्न क्षेत्रो मे क्या काल-विलम्बनाएँ (time lags) मानी जाएँ। किसान एक निर्णय अप्रैल-मई मे करता है और दूसरा अक्टूबर-नवम्बर मे। सूती मिल मालिक अपना वार्षिक निर्णय नवम्बर-दिसम्बर मे लेता है और मिल मजदूर शायद हफ्ते या पक्ष (fortnight) मे। साधारणतया विश्लेषण हेतु यह मान लेते है कि सभी पक्ष एक साथ प्रारम्भ होते है और एक साथ अन्त अर्थात् वे बराबर भी होते है।

विश्लेषण मे काल-विलम्बनाओ के लिए व्यवस्था की जाती है परन्तु यह काल-विलम्बना, पक्ष (period) का एक या कई गुना (integral multiple) ही मानी जाती है।

मॉडल विश्लेषण की सीमाएँ

पक्ष-विश्लेषण अथवा अन्य गणितात्मक विश्लेषण मे सूत्रीय सम्बन्ध या मॉडल (model) निर्माण की आवश्यकता पडती है। विभिन्न चुने हुए आर्थिक-चरो (economic variables) को एक या कई गणितीय समीकरण रूप से सम्बन्धित करते है। इनके सम्बन्ध मे निम्नलिखित शक्तियाँ उल्लेखनीय है—

(अ) आँकडे।

(ब) मॉडल।

(स) अनुगणन।

(द) यथार्थता और उसकी तुलना मे मॉडल की परीक्षा (test)।

(अ) आँकडे बिलकुल सही नही होते और वे सदैव उसी बात को नही मापते जिसकी मॉडल मे कल्पना की गई है।

(ब) मॉडल के सम्बन्ध मे निम्नलिखित लक्षण उल्लेखनीय हैं—

(१) वह ऐकिक (सीधा, Linear) होता है। इस सम्बन्ध मे यह समस्या उठती है कि क्या सम्बन्ध वक्रीय (non-linear) हो।

(२) यह मान लेते है कि विभिन्न काल-इकाइयो मे होने वाले दैव-विचलन (disturbances) एक दूसरे से अप्रभावित (Independent) हैं।

(३) उपयुक्त काल-इकाई (time unit) चुनते हैं जो सभी चरो (variables) के काम आवे।

(४) काल-इकाई के गुणन (multiple) रूप मे विभिन्न काल-विलबनाएँ चुनते हैं।

(५) प्रत्येक सम्बन्ध (समीकरण) से विशिष्ट चरो (specific variables)

को हटा देना पडता है। इसका अभिप्राय यह है कि समीकरण मे वही चर रहे जो सर्वथा उपयुक्त है। इस हेतु सह-सम्बन्ध (correlation) तथा अन्य अध्ययनो (परीक्षाओ, tests) द्वारा निर्णय लेना पडता है।

(स) अनुगणन, चाहे वह मानवीय हो या यान्त्रिक (mechanical), के कारण भी गलतियाँ आ जाती है।

(द) भावी यथार्थता से तुलना करके ही यह निर्णय करते है कि मॉडल कितना उपयुक्त बना है। परन्तु जिस यथार्थता से तुलना करते है उसके तथ्यो मे पर्यवेक्षण सम्बन्धी गलतियाँ होती है।

जब यथार्थता और मॉडल मे अन्तर मिलता है तो यह समस्या उठती है कि अन्तर का निम्नलिखित मे से कौनसा कारण है—

(१) उपयुक्त चार शक्तियो से सम्बन्धित गलतियाँ हैं।

(२) मॉडल के ढाँचे (structure) मे अशुद्धि है।

(३) कुछ चर (variables) छूट गए है।

(४) उपर्युक्त तीनो मे से कुछ या सब कारणो का सम्मिलित प्रभाव है।

अन्त मे, क्योकि कालक्रम (regular) या अक्रम (irregular) से एकत्र किये गए आँकडो के आधार पर ही पक्ष-विश्लेषण किया जाता है, अत लर्नर का निम्न-लिखित कथन उल्लेखनीय है—

क्योकि पूर्व-प्रतिपादित कारणो से समष्टिभावी-आर्थिक विकास की वैज्ञानिक व्याख्या पर्याप्त अल्पकालीन (fairly short period) विकास-विभाजन पर आधारित करना आवश्यक है, यह असम्भव है कि अर्थशास्त्री पक्ष प्रतिपक्ष स्थिति का अध्ययन एव विश्लेषण करे। तब भी, यह व्यवहारिक है कि पर्याप्त दीर्घकालीन अवधि मे घटना-चक्र का चित्रण किया जाए। यदि विशेष रूप से चुने पक्षो मे विश्लेषण द्वारा प्रगति की दिशा का निर्णय हो सके तो बीच के काल-पक्ष के स्वरूप और प्रगति को भी समझा जा सकता है। कभी-कभी यह आवश्यक हो सकता है कि पाक्षिक लक्षणो को परिवर्द्धित करके ही निष्कर्ष रूप मे रखा जाए ताकि वे सम्बन्धित पहलू के क्रियात्मक प्रवृत्ति का पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकें।

अत लर्नर ने आगे यह लिखा कि इतने से बिना अधिक कल्पना के यह समझा जा सकता है कि प्रगति की असीम भविष्योक्तियाँ निष्कर्ष स्वरूप निकाली जा सकती हैं। लर्नर का यह कथन पक्ष-विश्लेषणकर्त्ता को विनम्रता का सदेश देता है न कि निरुत्साह का। सभी विश्लेषण इस ध्येय से किये जाते हैं कि यथार्थ जगत् किस प्रकार चलता और प्रभावित होता है। कोई अन्तिम रूप से ज्ञान रखने का दावा नही कर सकता। एक ओर अर्थशास्त्री अपने-अपने विश्लेषण विधियो की राग अलापते है और दूसरी ओर आर्थिक नीति-निर्णायक केन्द्रित और विकेन्द्रित योजनाओ सम्बन्धी निर्णय लेता है। यदि ससारव्यापी प्रवृत्ति ग्रामीण या छोटे क्षेत्रो के आधार पर योजना बनाने की हो जाए तो शायद पक्ष-विश्लेषण, हिक्सीय प्रवैगिक विश्लेषण तथा सस्थिति विश्लेषण भी उतने महत्त्वपूर्ण न प्रतीत हो जितना उन्हे केन्द्रित बडी मात्रा के (राष्ट्र-स्तरीय) आर्थिक कार्यों के कारण माना जाता है। यदि जीवन

इच्छा-बाहुल्यता की पृष्ठभूमि मे नही चलाया जाए तो समझ मे नही आता कि कैसे भारत मे अन्तर-उद्योग सम्बन्ध और दीर्घकालीन पृष्ठभूमि मे अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन आवश्यक होगा ।

उपयुक्त विचार प्रकट करते समय यह बात सदैव ध्यान में है कि अधिकाधिक पश्चिमी अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को एक पेशा मानते है—ऐसा पेशा कि पेशेवर को ध्येय के औचित्य-अनौचित्य से कोई सरोकार नही रहता और वह केवल उन समस्याओ का विश्लेषण करता है जिन पर उसकी राय पूछी गई है । इस सम्बन्ध में प्रो० राबिन्सन (इ० ए० जी) का एक कथन उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्री को पूर्ण आजादी है—नही, यह उसका कर्त्तव्य है कि "वह जिस नीति को सर्वोत्तम समझता है उसका प्रतिदिन तथा जोरदार प्रचार करे । हाँ, यदि वह किसी मन्त्री के साथ काम कर रहा है तो उसको तत्कालीन निर्णीत नीति की पृष्ठभूमि मे ही काम करना चाहिए ।" हमारे दृष्टिकोण से मन्त्रियो के साथ काम करने वाले ऐसे व्यक्ति अर्थशास्त्री नही है । यह भी सही है कि जो अर्थशास्त्री कहलाते है वे केवल अर्थशास्त्री बनकर ही बाते नही कर सकते । अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते-करते वे मानव—नही, एक ही ब्रह्म से निकली आत्माएँ —बन जाते है और उसी प्रकार झकृत है । एक ओर जहाँ हम नूतन विश्लेषण-विधियो—यथा, पक्ष-विश्लेषण, ऐकिक आयोजन तथा आदा-प्रदा विश्लेषण (input-output analysis)—का आविष्कार करते है, हमको यह भी समझना चाहिए कि (१) इन विश्लेषणो की सीमाएँ (limitations) तथा मान्यताएँ (assumptions) क्या है, और (२) ऐसे मॉडल बनाने (और ऐसे निष्कर्ष निकालना) चाहिए जिन्हे कोई भी व्यक्ति साधारण बुद्धि से समझ सके ।

अध्याय ११

ऐकिक आयोजन

(Linear Programming)

द्वितीय महायुद्ध मे सैनिक कार्यालयो के कारण निर्मित होने वाली अध्ययन तथा विश्लेषण-पद्धतियो मे से एक को "ऐकिक आयोजन" कहते है। अमेरिकी वायु-सेना विभाग के डा० जार्ज बी० डेण्टज़िग (१९४७) ने इस अध्ययन-पद्धति को आरम्भ तथा विकसित किया। अब तो केलीफोर्निया विश्वविद्यालय तथा अन्य स्थानो के अर्थशास्त्र विभाग तथा अर्थशास्त्रियो विशेषतः कूपमैन्स (Koopmans) ने इस विश्लेषण-पद्धति की ओर ध्यान दिया है और अर्थशास्त्रीय समस्याओ के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक विश्लेषण हेतु इसका प्रयोग करने की चेष्टा की है।

अब तक अर्थशास्त्रीय समस्याओ के अध्ययन मे सीमान्त-विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया जाता था। रिकार्डो और माल्थस के समय से आरम्भ होकर अर्थ-शास्त्री 'से' (Say), सीनियर (Senior), कूर्नो (Cournot), जेवेन्स (Jevons), मेगर (Menger) और बीसवी सदी मे चेम्बरलिन (Chamberlin), जोन राबिन्सन (Joan Robinson) तथा वाइनर (Viner) ने क्रमश इस विश्लेषण पद्धति मे सशोधन तथा परिवर्द्धन किया इसमे गणित, ज्यामिति तथा चलन-कलन का पुट दिया। लेकिन अब इस पद्धति की स्थिति डाँवाँडोल हो चली है। सीमान्त विश्लेषण पद्धति का अर्थ यह है कि प्रत्येक उत्पादक (या उपभोक्ता) क्रय करते समय सीमान्त इकाई की उत्पादकता (या उपयोगिता) को ध्यान मे रखता है और विभिन्न वस्तुओ की सीमान्त उत्पादकता (या उपयोगिता) को बराबर रखने की चेष्टा करता है। यथा, उत्पादक सीमान्त लागत और सीमान्त आय को बराबर करता है और उपभोक्ता सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त व्यय को। लेकिन व्यवहारिक जीवन मे सीमान्त उपयोगिता कैसे मालूम की जाए? उत्पादक व्यवहार मे क्या करते हैं? इस सम्बन्ध मे अध्ययन वाछनीय थे। कुछ अर्थशास्त्रियो ने, जिनमे सर्वश्री हॉल (Hall), लेस्टर (Lester), डीन (Dean), हिच (Hitch), गॉर्डन (Gordon) तथा आइटमैन (Eiteman) उल्लेखनीय हैं, कुछ उद्योगो मे व्यावसायिक निर्णय के आधार और रूप का अध्ययन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि उत्पादक को सीमान्त अर्थो का तो ज्ञान भी नही प्राप्त हो पाता प्राप्त हो भी नही सकता। हॉल व लेस्टर ने प्रचलन (custom) तथा उचित लाभ (fair profit) को आधार बनाया है। आइटमैन का मत है कि वे उत्पादन-साधनो के सामान्य स्टाक बनाये रखने तथा चालू पूँजी के सामान्य फेर (Normal Turnover) को ध्यान मे रखते है। वॉन न्यूमैन तथा मुमॉर्गेन्सटर्न ने शतरंजी चाल और जुए सदृश खेलो को आधार मानकर सिद्धान्त

का ढाँचा खडा करने की चेष्टा की है।[1]

निस्सदेह यह कहना कठिन है कि व्यवहार मे उत्पादक अथवा उपभोक्ता का निर्णय-प्रक्रम (decision making process) क्या है? शायद ही कोई गणितीय-मॉडल (mathematical model) इस निर्णय-प्रक्रम को जता भी सके और इतना सरल भी हो कि गणितात्मक अनुगणन किये जा सके। तब भी निर्णय-प्रक्रम की कुछ शक्तियो को समझने के लिये ऐसे गणितीय मॉडल बनाये जा सकते है जो व्यवहारिक स्थिति के विशेष अनुरूप हो। ऐकिक-आयोजन अध्ययन इसी दिशा मे एक प्रयास है। यह उल्लेखनीय है कि सीमान्त-विश्लेषण (marginal analysis) की भाँति ऐकिक आयोजन के अन्तर्गत भी यह मान लेते है कि निर्णय परिमेय (rational) है और उनके फल (consequence) मापनीय है।

गणित की भाषा मे ऐकिक आयोजन ऐकिक असमताओ (linear inequalities) से सीमित (restricted) गणितीय फक्शन (mathematical function) को अधिकतम या अल्पतम करने से सम्बन्धित अध्ययन है। सीमान्त-अध्ययन के अन्तर्गत भी अधिकतम या अल्पतम का ही विचार करते है परन्तु वहाँ अधिकतर ऐकिक समताएँ (linear equalities) अध्ययन को सीमित करती है। असमता सम्बन्धी सीमा अधिक व्यावहारिक है। कल्पना कीजिए उत्पादक के पास तीन प्रकार के साधन सीमित मात्राओ मे उपलब्ध है। क्या, जब वह यह निर्णय करता है कि इनमे से किसका कितना प्रयोग करूँ कि मेरा लाभ अधिकतम हो, यह शर्त निहित नही रहती कि किसी साधन की मात्रा उपलब्ध मात्रा से अधिक न हो। सीमान्त-अध्ययन के अन्तर्गत हम इस असमता को भूल जाते है।

प्रचलित अर्थशास्त्रीय अध्ययन मे उत्पादन के साधनो का वर्गीकरण "भूमि, श्रम, पूँजी" के अन्तर्गत करते है और गणितीय अर्थशास्त्र मे तो सरल रूप से केवल श्रम तथा पूँजी को ही साधन मानते है।[2] व्यवहार मे उत्पादक की दृष्टि से एक साधन को दूसरे साधन से अलग समझने की कसौटी कुछ और ही है। वह उन सभी इकाइयो को एक साधन के अन्तर्गत मानता है जो पूर्णतया एक दूसरे की प्रतिस्थापन्न है अथवा जिनमे से किसी को, उस साधन का काम पडने पर, वह स्वीकार कर लेगा। अर्थात् वह इन सभी इकाइयो के प्रति तटस्थ (indifferent) है। ये सभी इकाइयाँ एक-सी है। ऐकिक आयोजन के अन्तर्गत प्रत्येक साधन को आदा (input) कहते है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की उत्पादित वस्तुओ को निरागत (output) वर्गो मे वर्गीकृत करते है। उत्पादक के सम्मुख सीमान्त आगतो का प्रयोग करके अधिकतम लाभार्थ प्रदा (output) की मात्रा निर्णय करना रहता है।

इस सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि उत्पादक के सम्मुख उत्पादन प्रविधि

---

१. वे मान लेते है कि प्रत्येक उद्योग में अल्पाधिकारी (oligopolists) होते है और प्रत्येक उत्पादक दूसरों की चालों को समझकर अपनी चाल द्वारा बाजी मार ले जाने की चेष्टा करता है। उनकी चालों का व्यवहार-स्तर (standard of behaviour) है। कई उत्पादक और व्यवहार-स्तर दोनों ही [illegible] अथवा अस्पष्ट है।

२ यथा, डगलस-कॉब फक्शन में उत्पादन = अ . $श्र^{ब} प^{स}$, जहाँ श्र = श्रम तथा प = पूँजी।

(production process) चुनने की भी समस्या रहती है। अर्थशास्त्र के सामान्य विद्यार्थी के सम्मुख बडी मात्रा और छोटी मात्रा के उत्पादन का विकल्प तो रहता ही है उसको मात्रागत क्रमागत वर्द्धमान प्रत्युपलब्धि (Increasing returns to scale) मात्रागत क्रमागत समान प्रत्युपलब्धि और मात्रागत क्रमागत ह्रासमान प्रत्युपलब्धि (Decreasing returns to scale) का भी अध्ययन करना पडता है। परन्तु कुछ लोग इस अन्तिम अध्ययन-विषय को नही मानते है। मात्रागत क्रमागत वर्द्धमान प्रत्युपलब्धि का अर्थ यह है कि यदि सभी साधनो को दुगुना कर दे तो उत्पत्ति दुगुनी से अधिक हो जाएगी।[1] ऐसा तो तभी हो सकता है जब इस कारण किसी साधन की क्षमता पहले से अधिक हो जाए अर्थात् दुगुने उत्पादन के लिए उस साधन की मात्रा दुगुनी से कम रखने से भी काम चल जाए। ऐसा तभी हो सकता है जब साधन की एक इकाई का दूसरी इकाई पर प्रभाव पडे। ऐसा प्रभाव केवल जानदार (animate) साधनो पर पड सकता है। जानदार साधनो मे मनुष्य (या श्रम) ही प्रमुख है। मनुष्य मनुष्य को देखकर अधिक एकाग्र, अधिक तीव्र, अधिक कुशल बनता है। मनुष्य ही प्रतियोगिता की भावना से प्रेरित होता है, मशीन नही। इस हेतु उत्पादन-मॉडल मे श्रम एकघात का (of first power) नही हो सकता। यदि श्रम की मात्रा-वृद्धि के साथ श्रम की उत्पादकता को बदलना है तो श्रम कम से कम द्विघातीय (of second power) होगा। ऐकिक-आयोजन-अध्ययन के अन्तर्गत यह सम्भव नही रहता है।

परन्तु ऐकिक आयोजन मे इसी बात को विभिन्न उत्पादन-प्रक्रम के रूप में देखते है। एक आदमी तथा एक मशीन के सहारे उत्पादक पचास फाउण्टेनपेन तैयार करता और दो 'आदमी' तथा दो 'मशीन' की मदद से १०० फाउटेन्पेन की आशा की जाती है। परन्तु यदि वह ११० फाउण्टेनपेन तैयार करे तो अतिरिक्त दस फाउण्टेनपेन का क्या कारण है? क्या यह कहना उचित होगा कि उत्पादक की व्यवस्था बुद्धि का अधिक उत्तम उपयोग हुआ ? इस बात को ऐकिक आयोजन के अन्तर्गत यह कहकर ले सकते है कि दूसरी परिस्थिति मे उत्पादन-व्यवस्था भिन्न थी। यह सम्भव है कि जितना व्यय उत्पादक दो आदमियो तथा दो मशीनो पर करता है उतने व्यय मे ही वह किसी दूसरे प्रकार का यन्त्र क्रय करके एक ही मनुष्य की मदद से ११० फाउण्टेनपेन तैयार करने लगे। तब उसका खुलासा यह होगा कि कुछ तो नई मशीन के कारण और कुछ नई मशीन के बहाने सहायक व्यक्ति की बुद्धि और श्रम-शक्ति का अधिक उत्तम उपयोग होने के कारण उत्पादन ११० होगा। उसका श्रेय केवल नए यन्त्र को अथवा मजदूरी की छिपी सामर्थ्य को अथवा उत्पादक की

---

१ प्रो० नाइट इस बात को नही मानते है क्योंकि उन्होंने "रिस्क, अन्सर्टेन्टी एण्ड प्राफिट" में कहा है—यदि किसी समुदाय (combination) के सभी साधन पूर्णतया घटाए-बढाए जा सकें और उत्पादन भी पूर्णतया विभाज्य हो तो स्पष्ट है कोई भी समुदाय के फल ठीक वैसे ही होंगे जैसे किसी अन्य सदृश-समुदाय के (of similar combination)। (पृष्ठ ९८)

कूपमेन्स ने इसी बात को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि यदि सभी साधन उपलब्ध हों तो किसी भी उत्पादन-कार्य की पुनरावृत्ति की जा सकती है और तब भी इस दूसरे उत्पादन-कार्य के फल वही होंगे जो पहले के।

व्यवस्था बुद्धि को देना कहाँ तक उचित तथा मान्य होगा ? अस्तु । उत्पादक को बहुधा यह निर्णय करना ही पडता है कि वह पुराने यन्त्रो के माध्यम से उत्पादन के कार्य को चलावे अथवा नए यन्त्र को काम मे लावे । ऐकिक आयोजन का एक मुख्य ध्येय यह निर्णय करना है कि उत्पादन की सर्वोत्तम प्रविधि क्या है । ऐकिक आयोजन इस प्रक्रम निर्णय करने के कार्य मे मदद पहुँचाने का एक व्यवहारिक ढग समझा जाता है ।

ऐकिक आयोजन की समस्या इस प्रकार रखी जाती है । एक उत्पादक के पास सीमित मात्राओ मे विभिन्न साधन उपलब्ध है । विचारान्तर्गत समय मे इन साधनो की मात्रा बढाई नही जा सकती । इन साधनो को किस प्रकार तथा किस-किस मात्रा मे उपयोग किया जाए कि लाभ अधिकतम हो । उत्पादक कौनसा उत्पादन-प्रविधि अपनावे । दो उत्पादन प्रक्रम एक ही समझे जाते है यदि क्रमश दोनो के प्रत्येक आगतो और निरागतो के अनुपात समान है । मान लो कि प्रथम प्रविधि के अन्तर्गत 'क' प्रकार के आगत साधनो (जिन्हे हम $\text{स}_{\text{१}}, \text{स}_{\text{२}}, \text{स}_{\text{२}}, \ldots, \text{स}_{\text{क}}$ कहेगे) की $\text{म}_{\text{१}}, \text{म}_{\text{२}}, \text{म}_{\text{3}}, \ldots, \text{म}_{\text{क}}$ मात्रा की सहायता से 'ख' प्रकार के पदार्थ (जिन्हे हम $\text{प}_{\text{१}}, \text{प}_{\text{२}}, \text{प}_{\text{२}}, \ldots, \text{प}_{\text{ख}}$ कहेगे) तैयार होते है और उनकी मात्राएँ $\text{म}'_{\text{१}}, \text{म}'_{\text{२}}, \ldots, \text{म}'_{\text{ख}}$ है । अब हम कह सकते है कि रासायनिक सूत्रो की भाँति—

$$\text{म}_{\text{१}}\ \text{स}_{\text{१}} + \text{म}_{\text{२}}\ \text{स}_{\text{२}} + \ldots + \text{म}_{\text{क}}\text{स}_{\text{क}} \longrightarrow \text{म}'_{\text{१}}\ \text{प}_{\text{१}} + \text{म}'_{\text{२}}\ \text{प}_{\text{२}} + \text{म}'_{\text{3}}\ \text{प}_{\text{3}} + \ldots + \text{म}'_{\text{ख}}\text{प}_{\text{ख}}$$

इसी प्रकार मान लो कि दूसरे उत्पादन प्रविधि मे निमाकित सूत्र लागू होता है—

$$\text{फ}_{\text{१}}\ \text{स}_{\text{१}} + \text{फ}_{\text{२}}\ \text{स}_{\text{२}} + \quad + \text{फ}_{\text{क}}\ \text{स}_{\text{क}} > \text{फ}'_{\text{१}}\ \text{प}_{\text{१}} + \text{फ}'_{\text{२}}\ \text{प}_{\text{२}} + \ldots + \text{फ}'_{\text{ख}}\text{प}_{\text{ख}} \quad (\text{ii})$$

तब दोनो प्रक्रम एक ही समझे जाएँगे यदि दोनो सूत्रो की विभिन्न मात्राओ के अनुपात वही हो, अर्थात्—

$$\frac{\text{म}_{\text{१}}}{\text{फ}_{\text{१}}} = \frac{\text{म}_{\text{२}}}{\text{फ}_{\text{२}}} = \ldots = \frac{\text{म}_{\text{क}}}{\text{फ}_{\text{क}}} = \frac{\text{म}'_{\text{१}}}{\text{फ}'_{\text{१}}} = \frac{\text{म}'_{\text{२}}}{\text{फ}'_{\text{२}}} = \ldots = \frac{\text{म}'_{\text{ख}}}{\text{फ}'_{\text{ख}}}$$

यदि ऐसा नही है तो उत्पादन-तकनीक (Production Technique) वही रहने पर भी दोनो प्रविधियो (Processes) को भिन्न समझा जाएगा । इस परिभाषा के कारण उसी प्रविधि मे केवल मात्रागत परिवर्तन (Change in scale of production) ही हो सकता है ।

प्रत्येक उत्पादक के सामने यह समस्या नही रहती कि उत्पादन फंक्शन एक है । उसको कई उत्पादन-प्रक्रम उपलब्ध होते हैं और वह एक या कई प्रक्रमो का स्थिति अनुसार उपयोग करता है । उदाहरणार्थ, यदि एक उत्पादन केन्द्र में दो यन्त्र है —एक उत्तम तथा दूसरा निम्न ढग का । उत्तम यत्र पर व्यय कम बैठता है । उस पर ही उत्पादक पहले उत्पादन करेगा फिर आवश्यकता होने पर निम्न श्रेणी के यन्त्र को काम मे लाएगा ।

मान लीजिये कि प्रतिदिन आठ घण्टे और प्रति मास १९२ घण्टे काम करके उत्तम यत्र पर एक श्रमिक प्रतिदिन किसी वस्तु की सौ इकाइयाँ तैयार करता है। श्रमिक व्यय प्रति इकाई एक रुपया और प्रति वस्तु कच्चा माल पर दो रुपया व्यय होता है। यदि आवश्यकता पडे तो ड्योढी मजदूरी देकर ४८ घण्टे अधिक काम लिया जा सकता है। इस प्रकार उत्तम यन्त्र पर साधारणतया २,४०० इकाइयाँ और आवश्यकता पडने पर ८०० इकाइयाँ तैयार की जा सकती हैं। २,४०० इकाइयो तक प्रति इकाई तीन रुपया व्यय होगा उसके बाद प्रति इकाई पर साढे तीन रुपया व्यय। अत २,४०० और ३,२०० के मध्य उत्पादन होने पर औसत व्यय

$$\text{३ ५} - \frac{\text{२४००}(\text{३ ५} - \text{३})}{\text{म}} = \text{३ ५} - \frac{\text{१२००}}{\text{म}}$$

होगा जहाँ 'म' उत्पादन की मात्रा है।

मान लीजिये निम्नतम यन्त्र पर श्रमिक व्यय प्रति इकाई १ रुपया ४ आने बैठता है और उस पर भी पूर्व १९२ घण्टे काम किया जा सकता है तथा यन्त्र की निम्न श्रेणी के कारण प्रति इकाई कच्चा माल का व्यय दो रुपए चार आने पडता है और आठ घटे मे उस पर केवल पचास इकाई माल तैयार होता है। तब १,२०० इकाइयाँ प्रति इकाई पौने चार रुपया औसत लागत पर तैयार हो सकती है। यदि निम्नतम यन्त्र पर अतिरिक्त ४८ घण्टे ड्योढी मजदूरी पर काम किया जा सकता है सो ४०० अधिक इकाइयाँ प्रति इकाई चार रुपए छः आने की दर से तैयार की जा सकती है।

यदि उत्पादक ३,२०० और ४,४०० इकाइयो के बीच उत्पादन करना चाहता है तो उसका औसत व्यय होगा—

$$\text{३ ७५} - \frac{\text{१२००} + \text{३२००}(\text{३ ७५} - \text{३·५})}{\text{म}}$$

$$= \text{३ ७५} - \frac{\text{२०००}}{\text{म}}$$

यदि उत्पादक ४,४०० और ४,८०० इकाइयो के मध्य उत्पादन करना चाहे तो उसकी औसत लागत निम्नाकित होगी—

$$\text{४}\tfrac{\text{६}}{\text{१६}} - \frac{\text{२०००} + \text{४८००}}{\text{म}} \, \frac{(\text{४}\tfrac{\text{६}}{\text{१६}} - \text{३}\tfrac{\text{३}}{\text{४}})}{}$$

$$= \text{४ ३७५} - \frac{\text{२०००} + \text{४८००}\,\tfrac{\text{१०}}{\text{१६}}}{\text{म}}$$

$$= \text{४ ३७५} - \frac{\text{५०००}}{\text{म}}$$

अत हम देखते है कि औसत उत्पादन व्यय का समीकरण निम्न प्रकार से होगा—

२४०० उत्पादन तक, औसत लागत $= \text{३}$

२४००—३२०० „ „ औसत लागत $= \text{३ ५} - \frac{\text{१२००}}{\text{म}}$

३२००—४४०० „ „ औसत लागत = ३ ७५ — $\frac{२०००}{म}$

४४००—४८०० „ „ औसत लागत = ४ ३७५— $\frac{५०००}{म}$

उत्पादक के सामने यह प्रश्न रहता है कि वह किस परिस्थिति मे उपलब्ध दो उत्पादन प्रक्रमो मे से किसको तथा कहाँ तक उपयोग करे परन्तु सीमान्त उत्पादन विश्लेषणकर्त्ता इन चार समीकरणो के स्थान पर केवल एक उत्पादन लागत समीकरण की कल्पना करते है। यदि उपरोक्त लागत को ग्राफ-पत्र पर चित्रित करे तो साथ के चित्र मे दिखाया औसत लागत वक्र मिलेगा। साधारण गणितात्मक अर्थशास्त्री इस वक्र को केवल एक समीकरण द्वारा दर्शाता था। यथा—

औसत लागत = उत्पादन-मात्रा का फक्शन।

ऐसे फक्शन उक्त कई स्थान से मुडी लागत रेखा का फक्शन नही हो सकता है। अत व्यवहारिक दृष्टि से पिछले गणितात्मक विश्लेषण विधि का महत्व घट जाता है। आगे इस सम्बन्ध मे विशेष विचार करेंगे।

ऐकिक आयोजन की मान्यताएँ

(१) **अधिकतम स्थिति**—सीमान्त-विश्लेषण पद्धति की भाँति ऐकिक आयोजन के अन्तर्गत भी गणितात्मक ढग से एक स्थिति को अधिकतम करते है। दोनो मे "गणितात्मक अधिकतम" का विचार निहित है। इसके यह मतलब भी है कि दोनो ही तर्कप्रधान है। यद्यपि सीमान्त विश्लेषण की अपेक्षा ऐकिक विश्लेषण यथार्थ-स्थिति के अधिक निकट है[1], दोनो ही ऐसे प्रभावो पर विचार करते है जो मापनीय (measurable) है।

(२) **ऐकिक समीकरण**—ऐकिक आयोजन मे प्रत्येक स्थिति मे ऐकिक समीकरण सम्बन्ध (linear equation relationship) है फिर चाहे जितना माल तैयार किया जाए। उदाहरणार्थ, हम कह सकते है कि

उत्पादन = ३ + ४(श्रम) + २(पूँजी)

यहाँ उत्पादन, श्रम तथा पूँजी की घात (Power) एक है। अर्थशास्त्रीय क्षेत्र मे इसके मतलब यह हुए कि समान प्रत्युप्लब्धि नियम लागू है तथा साधनो (यथा, श्रम और पूँजी) के प्रभाव एक दूसरे से स्वतन्त्र है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह दोनो निहित बाते नही मानी जा सकती।

(३) **विभाज्यता**—ऐकिक आयोजन मे यह मान्यता भी उठती है कि यदि साधन उपलब्ध है तो चाहे जितना उत्पादन बढा लीजिए। किसी भी साधन की इकाई निश्चित करने के पश्चात् केवल साधन की "कुल मात्रा" की सीमा का प्रभाव पडता है, साधन की निम्नतम मात्रा कुछ भी हो सकती है। उसमे अविभाज्यता (indivisibility) के कारण कोई बाधा नही उठती।

(४) **यौगिक गुण**—यदि हम वस्तु उत्पादन के दो ढग अपनाते है तो यह

---

१. क्योंकि ऐकिक आयोजन के अन्तर्गत ऐसी इकाइयों तथा ऐसी शक्तियों के आधार पर अनुगणन करते हैं जिन्हें व्यवसायी स्वयं व्यवहार में काम लाता है।

व्यवहार मे सम्भव है और इन दोनो मे से प्रत्येक के कारण उत्पादन और साधन-व्यय (input) आपस मे जोडे जा सकते है। यथा, यदि एक उत्पादन पद्धति का समीकरण सम्बन्ध

उत्पादन = ३ + ४ श्रम + २ पूँजी (i)

है और दूसरी उत्पादन-पद्धति का समीकरण सम्बन्ध

उत्पादन = १० + १ श्रम + ८ पूँजी (ii)

है तो दोनो का यौगिक उत्पादन समीकरण सम्बन्ध होगा—

उत्पादन = १३ + ५ श्रम + १० पूँजी (iii)

अर्थशास्त्र की दृष्टि से इसमे वह कमजोरी छिपी है कि दोनो उत्पादन पद्धतियो के एक ही समय चालू करने पर दोनो के बीच किसी ऐसे साधन की आवश्यकता नही पडती जो एक ही साथ दोनो मे काम आता हो। एक उत्पादक दो पद्धतियाँ चालू करेगा तो कम-से-कम वह स्वय दोनो प्रणालियो का सगठन करेगा और दोनो पर निगाह रखेगा। इस प्रकार उत्पादक द्वारा प्रेषित साधन दोनो प्रणालियो मे एक साथ सलग्न रहता है। अत दोनो उत्- [illegible] नितान्त स्वतन्त्र नही है। परन्तु ऐकिक आयोजन मे ऐसा नही मानते हैं।

(५) **सीमित उत्पादन-प्रणाली-संख्या**—ऐकिक आयोजन मे यह मान लेते हैं कि उत्पादन प्रणालियो की सख्या सीमित है। यथा, मान लीजिए कि हम यह मान लें कि लोहा उत्पादन की दो ही विधियाँ है और चीनी उत्पादन की तीन विधियाँ है।

मान्यताओ का आलोचनात्मक समीक्षण

पहली मान्यता के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक उपभोक्ता का सम्बन्ध है वह सदैव सोच-विचार तथा अधिकतम लाभ हेतु तर्क-वितर्क नहीं करता। कुछ मदो पर, जिन पर व्यय कम तथा पुनरावृत्ति अनेक होती है, व्यय करते समय वह मशीनवत् व्यवहार करता है, कुछ के सम्बन्ध मे वह तनिक सोचता है, और कुछ बडे व्ययो के सम्बन्ध मे वह अवश्य सावधानी के साथ विचार करता है। क्या उत्पादको के सम्बन्ध मे ऐसी बात नही कही जा सकती? भारतीय उत्पादको का व्यवहार तो ऐसा होता है कि वे पैसे-पैसे को दाँत से पकडते हैं। वे तभी आशातीत व्यय करते है जब प्रतिष्ठा की बात हो अथवा जब उनके अनुगणन के अन्तर्गत वैसा करने से किसी सिद्धि (अल्पकालीन या दीर्घकालीन) की सुरक्षा होती हो।

दूसरी मान्यता के दो अर्थ है। एक तो यह कि यदि प्रत्येक साधन को किसी निश्चित अनुपात मे बढा दें तो उत्पादन भी उसी अनुपात मे बढ जाएगा अर्थात् उत्पादन-फक्शन (Production Function), ऐकिक समघात (homogeneous of first order) है। अर्थात् इसके अतर्गत यह नही मानते कि उत्पादन-स्तर (scale of production) के साथ उत्पादन कम अधिक तीव्रता से बढता है। उत्पादन जिन साधनो पर निर्भर है यदि सभी दुगुने कर दिये जायँ तो यह सत्य है कि उत्पादन दुगुना हो जाएगा। हाल मे अर्थशास्त्री कूपमेन्स ने भी तो यही कहा है कि यदि प्रत्येक साधन उपलब्ध हो तो उत्पादन-व्यवस्था द्विगुणी की जा सकती है। परन्तु क्या यह सत्य है? क्या सभी साधन समान रूप से उसी दाम पर असीमित मात्रा मे उपलब्ध रहते है? उत्तर है, नही। तब भी उत्पादक

ऐसा समझे तो आश्चर्य नही। सत्य बात तो यह है कि उत्पादक सम्बन्धो मे साहसोद्यम तथा सगठनकर्त्ता की सीमित दशा का ध्यान भुला देते है। वही तो श्रम, पूंजी आदि के उत्तम सगठन और कम अधिक साहसोद्यम की व्यवस्था करता है। जहाँ ऐसे निर्णय मैनेजर पर होते है वहाँ साहसोद्यम की असीमित पूर्ति मानी जा सकती है। जहाँ ऐसा नही है वहाँ सचालको के प्रतिनिधि नीति-निर्णय कार्य को करते है। यथा, यूनीलिवर लि० इगलैड तथा हालैड दोनो देशो मे रजिस्टर्ड है, सचालकमडल प्राय वही है और उनके द्वारा निर्वाचित डायरेक्टर दोनो देशो के उत्पादन-कार्यो के सम्बन्ध मे नीति-निर्णय करते रहते है।

दूसरी मान्यता का दूसरा अर्थ यह है कि यदि किसी एक साधन की मात्रा बढाई जाए तब भी उत्पादन-मात्रा मे वृद्धि होगी। साधारण सूझ-बूझ के अनुसार यह असम्भव है। अलबत्ता यदि किसी साधन की प्रयुक्त इकाइयो का कम उपयोग हो रहा है अर्थात् यदि उनके सामर्थ्यभर उनसे काम नही लिया जा रहा है तब अवश्य तत्हेतु आवश्यक साधनो की वृद्धि करने से अधिक मात्रा का उत्पादन होगा। यदि हम यह मान ले कि साधनो की सभी इकाइयो का सर्वोत्तम उपयोग हो रहा है तो किसी एक साधन की मात्रा बढाने से उत्पादन कभी नही बढ सकता। किसी भी उत्पादन के साधन की दाल-खिचडी अलग नही पकती।

कहा जाता है कि साधनो की इकाइयाँ इस प्रकार परिभाषित की जा सकती है कि कोई भी उत्पादन-सम्बन्ध ऐकिक समघात बन जाए। गणित इस बात का दावा करती है कि किसी भी फक्शन (function) को उपयुक्त रूपातरण (transformation) के बाद किसी भी अन्य फक्शन मे रख सकती है। परन्तु क्या गणित परस्पर सम्बन्धित (interdependent) साधनो को स्वतन्त्र साधनो मे भी बदल सकती है?

अस्तु, ऐकिक उत्पादन-सम्बन्ध की बदौलत उत्पादन-प्रक्रम (Production Process) की परिभाषा आदा-प्रदा (input-output) अनुपातो के आधार पर की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस रूप मे ऐकिक असमताओ (Linear inequalities) सम्बन्धित प्रणाली की सहायता से ऐकिक आयोजन का प्रश्न हल किया जा सकता है।[1]

तीसरी मान्यता (विभाज्यता) के कारण कठिनाई तभी उठती है जब अनुगणन द्वारा उत्पादन (output, निरागत) अथवा आगत (input) भिन्न मे निकलते हो। ऐसा तभी हो सकता है जब कुछ निरागत और आगत वस्तुएँ इतनी विशाल अथवा बहुमूल्य हो कि यदि भिन्न को सन्निकट इकाई के बराबर मान ले तो अन्य वस्तुओ के तथा द्राव्यिक हिसाब मे बहुत-कुछ हेर-फेर पड जाएगा। यदि हवाई जहाज बनाना है और आदा (input) मे चद मन लोहा, अल्युमीनियम या कुछ श्रमिको की वृद्धि करँ दी तो क्या उत्पादन पर कुछ प्रभाव न पडेगा? जहाँ बडी मात्रा का उत्पादन होता

१ अब तो अ-ऐकिक प्रक्रम (non-linear process) के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में सर्वश्री वुड एवं गीज़लर (Wood and Geisler) के अध्ययन उल्लेखनीय है, यद्यपि यह सदेहात्मक है कि इस प्रकार बढ जाने वाली जटिलता के कारण कहाँ तक अधिक व्यवहारिक लाभ होगा।

है वहाँ ऐसी कठिनाई उठना अधिक सम्भव है। अन्यथा सामान्यत. प्रत्येक आदा (input) और प्रदा (output) की उपयुक्त इकाई परिभाषित कर देने के पश्चात् व्यवहारिक निष्कर्ष निकालने मे विशेष कठिनाई नही पडनी चाहिए।

चौथी मान्यता और पहली मान्यता (ऐकिक-सम्बन्ध-मान्यता) मे सादृश्य है। कोई भी उत्पादन-विधियाँ (Production Processes) हो, उनके उत्पादन-सम्बन्ध जोडे जा सकते है। ऐकिक मान्यता के अन्तर्गत उसी उत्पादन-विधि को द्विगुणी कर दे तो उत्पादन दुगुना हो जाएगा और ऐकिक सम्बन्ध जोडकर लिखा जा सकता है—

उत्पादन = ३ + ४ श्रम + २ पूंजी
उत्पादन = ३ + ४ श्रम + २ पूंजी
. २ उत्पादन = ६ + ८ श्रम + ४ पूंजी

यौगिक गुण के अन्तर्गत यदि

$\text{उत्पादन}_1 = ३ + ४$ श्रम + २ पूँजी
$\text{उत्पादन}_2 = १० + २$ श्रम + ३ पूँजी

तो हम कहेगे कि

$\text{उत्पादन}_1 + \text{उत्पादन}_2 = १३ + ६$ श्रम + ५ पूँजी

पाँचवी मान्यता सभी उद्योगो मे सत्य होगी, यह कहना कठिन है। रसायन-उद्योग, तेल संशोधन, कृषि आदि उद्योगो मे अपरिमित क्षेत्र रहता है। आदा (input) की मात्राएँ किसी भी अनुपात मे घटाई-बढाई जा सकती है और उत्पादन (output) की भी। परन्तु ऐसे भी अनेको उद्योग हैं जिनमे उत्पादन-विधियो की सख्या परिमित है।

ऐकिक आयोजन का व्यवहारिक महत्त्व

हम पहले कह चुके है कि आर्थिक क्रियाओ का अधिक यथार्थवादी और व्यवहारिक विश्लेषण करने के लिये आर्थिक क्रियाओ का क्लासिकल गणितात्मक अध्ययन कम उपयोगी है। उत्पादक अपने उत्पादन-कार्य के विभिन्न पहलुओ को समझने के लिये एजवर्थ, मार्शल और चेम्बरलिन सदृश विश्लेषण नही करता है। वह अपने उत्पादन-केन्द्र के प्रत्येक विभाग को एक उत्पादन-प्रक्रम मानता है और तत्सम्बन्ध मे यह अपेक्षा करता है कि उसका साख्यिकीय अधिकारी प्रत्येक विभाग के आदाओ (inputs) और प्रदाओ (outputs) के सम्बन्ध का अध्ययन करेगा। सारे उत्पादन-केन्द्र मे प्रयुक्त साधनों (श्रम, मिल, यन्त्र, यातायात-सुविधा आदि) को कुछ वर्गों मे बाँटता है और अपने सारे उत्पादन को इन कुछ वर्गो के फलस्वरूप लेखता है। उसका कुल उत्पादन उसके इन कुछ वर्गों का अधिकतर ऐकिक फक्शन (linear function) होता है।

अत उत्पादक के व्यवहारिक कार्य-प्रणाली को समझने के लिये ऐकिक आयोजन अध्ययन-विधि उत्तम है।

अब तो यही विधि सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओ का अध्ययन करने के लिये भी प्रयुक्त की जाती है। ऐसा करते समय अध्ययन को ऐकिक-आयोजन के स्थान पर आदा-प्रदा (या आय-व्यय) विश्लेषण की सज्ञा देते हैं। अध्ययन की मान्यताएँ और सीमाएँ प्राय वही हैं जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं। हम इस सम्बन्ध मे अलग से विस्तारपूर्ण विवेचना करेगे।

ऐकिक आयोजन के व्यवहारिक प्रयोग की सीमा

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके है, ऐकिक आयोजन का विकास द्वितीय महायुद्ध काल मे विशेष रूप से किया गया। अमेरिकी सैन्य-विभाग के अतिरिक्त अमेरिकी सरकार के श्रम-ब्यूरो मे श्री इवास के नेतृत्व मे पर्याप्त उपयोगी कार्य हो रहा है। इस कार्य की व्यवहारिक तीन प्रमुख कठिनाइयाँ उल्लेखनीय है—

(१) उपर्युक्त पर्याप्त आँकडो की कमी है।

(२) प्राप्त आँकडो के आधार पर बने समीकरणो को हल करने के लिये अनिवार्य विशद यान्त्रिक अनुगणन (mechanical computation) जटिल है।

(३) ऐकिक आयोजन मे सैद्धान्तिक कमियाँ है जिनमे से कुछ का हम मान्यताओं के अन्तर्गत उल्लेख कर चुके है।

ऐकिक आयोजन और श्रम-विभाजन

सरलता से जटिलता की ओर प्रवृत्ति के मूल कारण दो है। प्रथम, हम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के लिये प्रयत्नशील होते है। द्वितीय, हम केन्द्रीयकरण—भले ही विश्व के स्तर तक हो—को वांछनीय मानते है। क्योकि बडे-बडे अर्थशास्त्री इन दो कारणो को प्राथमिक महत्त्व देते है अत वे भूल जाते है कि ससार के विभिन्न भागो की विभिन्न जलवायु है और विभिन्न वातावरण है। अत प्राकृतिक शक्तियो के कारण ही विभिन्न देशो के लोग विभिन्न प्रकार से रहते है और उनके अपने तरीके ही उनको सुखदायक है। अत विभिन्न क्षेत्रो मे जीवन-मूल-स्तर (standard of life) की व्यापकता की ओर देखना तो उचित है, परन्तु विभिन्न क्षेत्रो मे जीवन-स्तर (standard of living) की एकता को लाने का प्रयत्न करना अवाछनीय है। जीवन-स्तर की एकता जाँचने के लिये आजकल मौद्रिक जीवन-निर्वाह व्यय को आँकते हैं। अन्य शब्दो मे मौद्रिक व्यय जीवन-स्तर का माप है। यह मौद्रिक माप अति भुलावे मे डालने वाला होता है। अत यह वाछनीय जान पडता है कि वाछनीय जीवन-स्तर के कार्यान्वयन (implementation) के लिये विभिन्न क्षेत्रो मे अलग-अलग अनुगणन करना चाहिए तथा तत्सम्बन्धी प्रयास क्षेत्रीय आधार पर अधिक किये जाएँ। विभिन्न भौगोलिक स्थिति वाले क्षेत्रो के प्रयासो को एक सामूहिक रूप से देखने पर जो निष्कर्ष निकलते है तथा जिनके आधार पर राष्ट्रीय-नियोजन किया जाता है वह भी उचित नही है। वास्तव मे राष्ट्रीय आर्थिक विकास के प्रयत्न गाँव-गाँव के स्वय-निर्भरता के आधार पर करना अधिक उचित होगा। यदि ऐसा किया जाए तो ऐकिक आयोजन की मान्यताओ मे कमी हो जाएगी तथा ऐकिक आयोजन ग्रामीण की उत्पादन तथा अर्थ-व्यवस्था को समझने के लिए विशेष उपयुक्त सिद्ध होगा। अन्य शब्दो मे, हम ऐकिक आयोजन की मान्यताओ तथा जटिलताओ से भी बच जाएँ यदि हम वाछनीय विकेन्द्रीयकरण तथा छोटे क्षेत्रीय आत्म-निर्भरता के आधार पर आर्थिक विकास करने का प्रयत्न करें। इस वाछनीयता के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम, भौगोलिक विभिन्नता तथा द्वितीय, मानव-स्वभाव के लोभी तथा शक्ति-लोलुप होने के कारण समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के कार्यान्वयन की अव्यवहारिकता का मूर्त्तमान हो उठना यथा, महायुद्ध, स्वेज-सक्रान्ति आदि।

अध्याय १२

आदा-प्रदा विश्लेषण

अर्थशास्त्र के सामान्य सस्थिति सिद्धान्त के अन्तर्गत वालरा (Walras) तथा पैरेटो (Pareto) ने जिन सामान्य सस्थिति समीकरणो का प्रतिपादन किया है वे बाजार के पूर्ति एव माँग के समीकरण है और कीमतो के द्वारा बँधे है। यथा, यदि दो उत्पादन-साधन हो (जिनकी कुल मात्रा क्रमश $उ_१$ तथा $उ_२$ हो) दो उद्योग हो (जिनके उत्पादन समीकरण क्रमश $व_१=ग_{११}उ_१+ग_{१२}उ_२$ एव $व_२=ग_{२१}उ_१+ग_{२२}उ_२$ हो) और दो साधक परिवार हो जिनकी आय (=उपभोग व्यय) क्रमश $अ_१$ तथा $अ_२$ हो, तो हम कह सकते है कि

$$अ_१=क_१व_{११}+क_२व_{२१}$$
$$अ_२=क_१व_{१२}+क_२व_{२२}$$
$$व_१=व_{११}+व_{१२}$$
$$व_२=व_{२१}+व_{२२}$$
$$व_१=ग_{११}उ_{११}+ग_{१२}उ_{२१}$$
$$व_२=ग_{२१}उ_{१२}+ग_{२२}उ_{२२}$$
$$उ_१=उ_{११}+उ_{१२}$$
$$उ_२=उ_{२१}+उ_{२२}$$
$$अ_१=प्र_१(उ_{११}+उ_{१२})$$
$$अ_२=प्र_२(उ_{२१}+उ_{२२})$$

यहाँ $क_१$, $क_२$, $प्र_१$ तथा $प्र_२$ क्रमश. वस्तु $व_१$, वस्तु $व_२$, साधन $उ_१$ तथा साधन $उ_२$ की बाजार-कीमते हैं। $ग_{११}$ तथा $ग_{१२}$ साधनो का उत्पत्ति $व_१$ से सम्बन्ध सकेत करते है। इसी प्रकार $ग_{२१}$ तथा $ग_{२२}$ वस्तु $व_२$ के साधन-गुणक (Factor or Technical Coefficients) हैं। पहले उद्योग का उत्पादन $व_१$ है और तदर्थ पहले साधन की $उ_{११}$ मात्रा तथा दूसरे की $उ_{२१}$ मात्रा काम आती है। इसी प्रकार दूसरे उद्योग का उत्पादन $व_२$ है जिसके उत्पादन मे साधनो की क्रमश $उ_{१२}$ तथा $उ_{२२}$ मात्राएँ काम आती है।

ऐसे समीकरणो को हल करके यह निकाला जा सकता है कि किस वस्तु की कितनी उत्पत्ति की जाएगी तथा उत्पादित वस्तु का कैसे उपभोग होगा। इन समीकरणों मे उत्पादन-समीकरणो के गुणक $ग_{११}$, $ग_{१२}$ $ग_{२१}$, $ग_{२२}$ आदि के "मान" को दिया हुआ मान लेते हैं। परन्तु व्यवहार मे वे कैसे जाने जा सकते है, उनमे होने वाले परिवर्तनो का विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन तथा उपभोग पर क्या प्रभाव पडता है, आदि प्रश्न अछूते रह जाते है।

ऐतिहासिक प्रसंग—वालरा (Walras) तथा पैरेटो ने इस बात का खुलासा नही किया कि उनके सामान्य सतुलन व्याख्या का व्यवहारिक उपयोग कैसे किया जाए। काफी समय तक अर्थशास्त्रियो ने अलग-अलग वस्तुओ के पूर्ति-समीकरण (supply equations) तथा माँग-समीकरण (demand equations) को अनुगणन करने की चेष्टा की। किंग (G King), मूर (H. L. Moore), इजेकिल (M Ezekiel), पिगू (A C Pigou), लिओटिव (Leontief), शुल्ज (Henry Schultz) ने इस दिशा मे पर्याप्त प्रयत्न किये। ये विश्लेषण सरल होते थे और इसके पहले कि इतने समीकरण प्राप्त हो जाएँ कि सम्पूर्ण वालरा-व्यवस्था (Walrasian System) की व्यवहारिक व्याख्या की जा सके, इन अनुगणन समीकरणों की सहायता से आशिक सतुलन समस्याओं (Partial Equilibrium Problems) को हल करने की भी चेष्टा की जाती है।

परन्तु पूर्ति तथा माँग समीकरणो को सीधे-सीधे अनुगणन करने की कठिनाई के अतिरिक्त सबसे बडी कमी यह है कि कीमत और मात्रा का सम्बन्ध स्थायी नही रहता। यह सम्बन्ध स्थायी रह भी नही सकता क्योकि इसमे स्वरूप-सम्बन्ध (Structural relations) की बाते निहित है। अत व्यवहार-प्रिय अर्थशास्त्रियो ने आधारभूत स्वरूप-सम्बन्धो के विश्लेषण की ओर ध्यान दिया।

अर्थशास्त्री उत्पादन के पाँच साधन गिनाता है—भूमि, श्रम, पूँजी, सगठन तथा साहस। परन्तु व्यवहार मे वह इनमे से किसी एक को नापना अति कठिन पाता है। प्रत्येक मनुष्य मे, जिसे हम श्रमिक कहते है, पूँजी, साहस, सगठन एव भूमि पक्ष भी निहित होते है। अत व्यवहार मे किसी लाभदायक विश्लेषण के लिये इन साधनो की ओर से मुख मोडकर एक अन्य प्रकार का अध्ययन आरम्भ हुआ है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओ द्वारा काम मे लाई जाने वाली तथा उत्पादित की गई वस्तुओं के आधार पर विश्लेषण किया जाता है।

देश भर के उद्योगो के उत्पादन मात्रा और उत्पादन-मात्रिक के व्यय का एक नया विश्लेषण आरम्भ हुआ है। प्रत्येक उद्योग का सामान निम्नलिखित ग्राहको द्वारा खरीदा जाता है

(१) अन्य उद्योग, (२) सरकार, (३) उपभोक्ता, (४) विदेशी ग्राहक[1]।

विभिन्न उद्योगो के लिए इस प्रकार का विश्लेषण करने पर निम्न प्रकार की तालिका बनेगी—

उद्योग	उद्योग			अन्तिम उपभोक्ता		निर्यात	स्टाक-वृद्धि	कुल आय
	अ	ब	स	व्यक्ति	सरकार			
अ	...	...	...	...	...	...	. .	...
ब	...	...	....	...	...	...	. .	.
स	...	...	...	...	...	...	.	.
आयात	.	...	...	...	...	..	.	..

१. उत्पादन का यह वितरण यदि द्रव्य में रेखा जाय तो भाव बढ जाने के कारण होने वाली वृद्धि को भी स्थान देते है।

इस प्रकार हमको मालूम पड जाएगा कि उद्योग का माल कहाँ-कहाँ जाता है। यदि हम किसी भी कालम मे ऊपर से नीचे की ओर नजर डाले तो हमको यह पता चल जाएगा कि 'अ' उद्योग को किस-किस उद्योग से माल प्राप्त होता है। इसमे हमको आयात जोड देने पर अ' उद्योग मे लगने वाले कुल माल का ज्ञान हो जाएगा। यदि यह विवरण द्राव्यिक मूल्य मे रखा जाए तो प्रत्येक कालम मे श्रमिक-व्यय, टैक्स (राज्य सहायता घटाकर) तथा कुल लाभ जोड दे तो 'अ' उद्योग का कुल व्यय मालूम पड जाएगा। तब तालिका की स्थिति निम्न प्रकार की होगी—

उद्योग	उद्योग			अन्तिम-उपभोक्ता			स्टाक-	स्टाक-	कुल आय
	अ	ब	स	व्यक्ति	सरकार	निर्यात	वृद्धि	मूल्य वृद्धि	
अ	.	.	.	. .	.	...	.	...	...
ब	२		.	. .		...	.	...	५७
स	५	...	..	..	...	...	.	..	३१९
अन्य उत्पादन व व्यापार	१३	..	...	.	...	...	..	...	५२२
अन्य उद्योग	.	. .	.	.	.	...	.	. .	१५४
आयात	४६			. .	. .	...	.	..	२७९
अन्तिम व्यक्ति द्वारा बिक्री	१		.	...			.	...	...
कुल	६७	.	.		.		.	. .	११३३
श्रमिक प्रतिफल	४८	...		...		.	..	.	७४५
कुल लाभ	३४			...	.		. .	.	४४०
टैक्स (राज्य सहायता काटकर)	१	.		.	..	. .	. .	.	१९५
कुल व्यय	१५०	.	. .	...	...	. .	...	.	३५८८

"अन्य उत्पादन तथा व्यापार" के अन्तर्गत यातायात, सवाद, वितरण-श्रोत, बीमा, बैक आदि सेवा उद्योग आ जाते है। 'अन्य उद्योग' के अन्तर्गत "राज्य प्रबन्ध, रक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, मकान-मालिकाना, गृह-सेवाएँ और लाभ न करने वाली सस्थाएँ" आती है।

विश्लेषण तालिका और वृद्धि प्रभाव—उक्त तालिका देश भर के उद्योगों के आय-व्यय की तालिका है। उसको देखने से पता चल जाता है कि किसी उद्योग का कितना महत्त्व है। मान लीजिए 'अ' उद्योग सूती उद्योग है। तो 'अ' उद्योग मे १०% वृद्धि करने के लिये किन-किन उद्योग-धन्धो के उत्पादन मे कितनी वृद्धि करनी पडेगी यह सरलता से अध्ययन किया जा सकता है। उपर्युक्त तालिका मे 'अ' उद्योग के अन्तर्गत कुछ अक दिखाये गए है। दस प्रतिशत वृद्धि होने पर आयात मे लगभग ४ ६ की वृद्धि होगी। 'ब' उद्योग मे ०·२, अर्थात् ५७ का लगभग ०·४% की वृद्धि होगी। 'स' उद्योग मे ३१९ से ०·५ अर्थात् लगभग १६% की वृद्धि होगी।

अत 'अ' उद्योग की वृद्धि का अन्य उद्योगो और मदो पर क्या प्रभाव पडेगा, यह बात उक्त तालिका से पता लग जाती है।[1] इसी प्रकार यह भी मालूम पड जाएगा कि श्रमिक आय कितनी बढेगी तथा सरकारी आय कितनी बढेगी ? ऐसी सूचना के आधार पर योजना बनाने वालो को अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। और योजना का आधार अधिक दृढ और विस्तृत हो जाता है।

विश्लेषण-तालिका और राष्ट्रीय-आयोजन—ऐसे काल मे जब राष्ट्रीय आर्थिक कार्यक्रम की वृद्धि हो रही हो तथा जब राष्ट्रीय आय मे राष्ट्रीय कार्यक्रमो का महत्त्व बढ रहा हो, ऐसे अध्ययन द्वारा इन क्षेत्रो मे पडने वाले प्रभावो को भली भाँति समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि 'अ' उद्योग वस्त्र उद्योग है और 'ब' उद्योग स्टील उद्योग है और 'ब' स्टील उद्योग मे ०.४% की वृद्धि नही हो सकती तो सरकार अपने 'अ' उद्योग सम्बन्धी योजना की कठिनाई और सीमाएँ समझ जाएगी। ऐसी तालिका की सहायता से आयोजित आर्थिक विकास कार्य मे मात्रिक और व्यवस्था सम्बन्धी नियन्त्रण सरल हो जाते हैं। राष्ट्रीय विनियोजन और प्राइवेट (वैयक्तिक) विनियोजन नीतियो का अधिक समन्वय हो सकता है ताकि वे एक-दूसरे के विरोध मे न आएँ।

विश्लेषण-तालिका और प्राइवेट उत्पादन—किसी वैयक्तिक व्यापारी या साहसी के दृष्टिकोण से भी ऐसी तालिका लाभपूर्ण होगी। निस्सन्देह अब वह अपने उद्योग के दूसरे उद्योगो से सम्बन्ध के बारे मे अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेगा। वह यह भी जान सकेगा कि उसके ग्राहको पर अन्य आर्थिक परिवर्तनो का क्या प्रभाव पडेगा।

आदा-प्रदा विश्लेषण तथा आर्थिक विकास—आर्थिक विकास कार्य मे विश्लेषण तालिका के महत्त्व को विशेष रूप से समझना वाछनीय है। पूजी निर्माण तथा साधनो के सर्वोत्तम उपयोग हेतु आर्थिक योजनाएँ बनाई जाती है। राष्ट्रीय आय के तीव्रतम वृद्धि के पक्ष मे विदेशी भुगतान, विभिन्न साधनो की मात्रा तथा अन्तिम माँग के स्वरूप, बाधाएँ (अथवा सीमाएँ) है। इन सीमाओ को दृष्टि मे रखकर उत्पादन के पूंजी, श्रम अथवा आवश्यक आयातांश के अनुपातों के आधार पर उद्योग (अथवा उद्योग-क्षेत्र) विशेष की योजनाएँ बनाई जाती है। राष्ट्रीय आय वृद्धि तथा वृत्ति के ध्येय पूर्वनिश्चित होते है और यह भी पूर्व-अनुमानित होता है कि वृद्धि का कितना उपभोग हेतु लगेगा और कितना बचाकर विनियोग किया जाएगा।

ऐसी परिस्थिति मे आदा-प्रदा विश्लेषण की सहायता से यह ज्ञात हो सकता है कि योजना-ध्येय की पूर्ति का विदेशी भुगतान, वृत्ति तथा कुल विनियोग की आवश्यकता पर क्या प्रभाव पडेगा। उक्त विश्लेषण की सहायता से विभिन्न विनियोग-क्षेत्रो मे उपयुक्त सतुलन भी स्थापित करना सरल हो जाता है। दिए ध्येयो की पूर्ति हेतु उद्योग-क्षेत्रो की योजनाओ की पर्याप्तता का परीक्षण सम्भव हो जाता है।

---

१. अनुगणनयुक्त उदाहरण के लिए इस अध्याय का परिशिष्ट देखिए।

प्रदा तालिका (१९४७) को तैयार की गई है, इगलैंड मे १० × १० कालम वाली (१९४६-५१), नार्वे मे ३४ × ३४ कालम वाली (१९४८), इटली मे २०० × ५६ कालम वाली (१९५०), नीदरलैंड मे २५ × २५ की तालिका (१९४८-४९) तथा डेन्मार्क मे २१ × २१ की तालिका (१९४९)। इनको तैयार करने मे लगभग चार वर्ष का समय लगा है।

अमेरिका का अनुभव—अमेरिका का अनुभव तो उत्साहवर्द्धक है। वहाँ ही प्रो० लिओनटीव (Prof Leontief) के प्रयत्नस्वरूप ऐसी तालिका पहले तैयार की गई। सन् १९४७ के ऑकडो के आधार पर बनी तालिका सन् १९५२ की स्थिति की प्रतिनिधि सिद्ध हुई। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि विख्यात जनरल मोटर कम्पनी के विशेषज्ञ ऐसी विश्लेषण-तालिका के विरुद्ध थे और उनमे से एक श्री रोजर कीए जब रक्षा के उप-मन्त्री बने तो उन्होने ऐसी तालिका बनाने के कार्य को स्थगित करने के आर्डर अभी हाल मे पास कर दिए है, यद्यपि जनरल मोटर कम्पनी के अन्य विशेषज्ञो का वर्तमान मत यह है कि विश्लेषण-कार्य रोका न जाए। अस्तु, भारत ऐसे देश मे जहाँ जीवन-प्रवाह एक-सा रहता है पाँच-सात वर्ष पहले के भी ऑकडे नीति-निर्धारण के हेतु काम मे लाते है—लाए भी जा सकते हैं। भारत की राष्ट्रीय साख्यिकीय परिषद् मे अन्तर-उद्योग सम्बन्धित, आदा-प्रदा सारिणी बनाने तथा सहसम्बन्ध गुणक अनुगणित करने की चेष्टा की गई है। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र सम्मेलन (१९५७) में भी रिजर्व बैंक प्रतिनिधि तथा डा० लोकनाथन ने अर्थशास्त्रीय कृषि और कृषि आदा-प्रदा सारिणी की उपयोगिता और वाछनीयता पर जोर दिया था।

विश्लेषण-तालिका तथा मूल्य व यान्त्रिक प्रभाव—इस प्रकार के पुराने आँकडो के आधार पर बनी विश्लेषण-तालिका मे मूल्य परिवर्तन का प्रभाव प्रत्यक्ष नही होता। क्योकि विश्लेषण-तालिका मे दिखाए आँकडे द्रव्य मे दिए रहते है अत दो-चार वर्ष बाद मूल्यो मे घट-बढ के कारण ये आँकडे तभी काम के हो सकते हैं जब होने वाले मूल्य-परिवर्तनो के अनुसार उन्हे बदल लिया जाय। ऐसा करने पर भी यान्त्रिक तथा आर्थिक कारणो के प्रभाव शामिल करना बाकी रहेगा। उदाहरणार्थ यदि बिनौला की अपेक्षा मूँगफली सस्ती हो गई तो वनस्पति घी-उद्योगी बिनौले के स्थान पर मूँगफली की अधिक माँग करेगे। परन्तु इस अधिक माँग का विश्लेषण तालिका मे समावेश नही किया जाता। इसी प्रकार कोई नवीन यन्त्र या उत्पादन-पद्धति का आविष्कार हो जाने पर जो परिवर्तन होगे वे भी तालिका मे प्रतिलक्षित न होगे।

यदि किसी वस्तु (यथा, 'अ') को बनाने की दो विधियो का विचार आदा-प्रदा तालिका मे रखना है तो उसका एक उपाय है। उपर्युक्त दूसरी आदा-प्रदा तालिका मे 'अ' उद्योग के कालम के स्थान पर दो कालम '$अ_1$' तथा '$अ_2$' रख ले। '$अ_1$ के अन्तर्गत उन उत्पादन-इकाइयो का विवरण रखे जो पहली प्रविधि इस्तेमाल करती है और '$अ_2$' के अन्तर्गत दूसरी प्रविधि काम मे लाने वाली उत्पादन-इकाइयो के विवरण सम्मिलित किए जाएँगे। परन्तु स्तरो (rows) मे अ-उद्योग के स्तर के

दो भाग नही करेंगे क्योकि $अ_1$ तथा $अ_2$ दोनो प्रविधियो द्वारा एक ही वस्तु (अ) तैयार की जाती है।

इसी प्रकार अन्य उद्योगो मे भी दो या अधिक प्रविधियो का विचार रखा जा सकता है।

परन्तु आदा-प्रदा तालिका के अन्तर्गत मात्रागत मितव्ययो (economies of scale) का विचार रखना कठिन है। इस तालिका मे समान प्रत्युपलब्धि नियम को ही मान्यता प्रदान की गई है।

विश्लेषण-तालिका और अर्थशास्त्र-अध्ययन—उत्पादन मे आदा-प्रदा विश्लेषण के फलस्वरूप अनेक नई आर्थिक मान्यताओ और उपपत्तियो को कसौटी पर कसा जा सकेगा। यह सम्भव है कि इसकी सहायता से आयोजित भावी उत्पादन विकास का बेकारी और बेकारी पर पडने वाला प्रभाव आँका जा सके। यदि ऐसा हुआ तो आर्थिक नीति निर्णय मे ऐसे विश्लेषण का महत्त्व बढ़ जाएगा। एक बात और। अर्थशास्त्री एक घटना को अनेक कारणो के फलस्वरूप देखने की चेष्टा करते है। घटना और इन कारणो के बीच जो सम्बन्ध है उसका बहुकारणीय गणितात्मक या साख्यिकिक अध्ययन (Multi-Variate Mathematical or Statistical Analysis) करते है। ऐसे अध्ययन सामान्य साहसी, उत्पादन, राजनीतिक नेता के समझ के बाहर होते हैं। प्रस्तुत विश्लेषण तालिका उक्त अध्ययन-रीति का स्थानापन्न बन जाती है। सिद्धान्त की दृष्टि से ऐसा विश्लेषण स्थैतिक (Static) है परन्तु उपर्युक्त अमेरिकी अनुभवस्वरूप देश-विशेष के स्थिर जीवन-निर्वाह तथा उत्पादन प्रणाली के कारण प्रवैगिक (Dynamic) स्थितियो मे भी इसके उपयोग का प्रयत्न किया जा सकता है।

अन्य मिलते-जुलते उपयोग—उपर्युक्त विश्लेषण मे उद्योगो का विभाजन निर्मित वस्तु के आधार पर करते है। परन्तु साधनो के विकास की दृष्टि से हम उद्योगो को विशिष्ट प्रयुक्त साधन अथवा उत्पादन-प्रणाली के आधार पर बांट सकते है यथा (१) उद्योग जो विद्युत् तैयार करते हैं, उद्योग जो मशीन का प्रयोग करते हैं आदि। इसी प्रकार का अध्ययन हम पेशो मे विभाजित व्यक्तियों द्वारा प्राप्त आय और व्यय के सम्बन्ध मे कर सकते है—

	किनको पैसा देता है			
	व्यापारी	मजदूर	नौकर	अखबार
व्यापारी				
क्लर्क				

इसी भाँति देश को विभिन्न क्षेत्रो मे बाँटकर वहाँ से जाने वाले साधनो की तालिका बना सकते है।

कहाँ-कहाँ कितने का साधन गया

	दक्षिण	बम्बई	पंजाब	बंगाल	मध्य प्रदेश
उत्तर प्रदेश					

उक्त अध्ययन को हम श्रम साधन, पूँजी साधन आदि के लिये अलग-अलग कर सकते है। इसी प्रकार वस्तुओ के आयात-निर्यात का अध्ययन हो सकता है। यथार्थ मे ऐसा अध्ययन करने की कभी-कभी चेष्टा भी की जाती है।

ऐसे ही हम यह अध्ययन कर सकते हैं कि किस सामाजिक स्तर अथवा पेशे या आय वाला किन-किन विभिन्न वस्तुओ पर क्या व्यय करता है। यह शत-प्रतिशत प्रस्तुत विश्लेषण-सदृश अध्ययन तो नही है परन्तु उससे मिलता-जुलता अवश्य है। साख्यिकी की दृष्टि से यह अध्ययन बहु-कारण-एक करण (Multivariate analysis) के गणितात्मक विश्लेषण के स्थानापन्न है और तीव्र व्यवहारिक प्रयोग के लिये सहायक सिद्ध होते हैं।

आदा-प्रदा विश्लेषण की सांख्यिकीय कमियाँ[१]—आदा-प्रदा विश्लेषण के अन्तर्गत जिन प्राविधिक गुणको का मान निकालते है उन "मानो" की विश्वस्त विचलन सीमाएँ (Confidence Limits) नही निकालते है। साख्यिकीय अध्ययन के आधार पर प्रत्येक "मान" की एक ऊपरी (Upper) तथा एक निचली (Lower) सीमा होती है और अधिकतर ९५% सम्भावना होती है कि सही मान इन दो सीमाओ के बाहर नही होगा। यदि यह सीमाएँ ज्ञात हो तो कुछ काल पश्चात् पुन ज्ञात किये गए "मान" की पूर्व-अनुगणित मान से तुलना की जा सकती है और यह कहा जा सकता है कि वे भिन्न हैं या नही।

द्वितीय, जब दो विभिन्न काल मे किसी प्राविधिक-गुणक का मान निकालते है तो यह मान लेते है कि दोनो मानो के सैद्धान्तिक विचलन (Theoretical variance) वही है अर्थात् चालू वर्ष मे "मान" पर प्रभाव डालने वाली विभ्रम शक्तियाँ (Error forces) वही है जो आधार वर्ष के मान पर प्रभाव डालती थी।

तृतीय, एक उद्योग से दूसरे उद्योग (अथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र) मे जाने वाली मात्रा का सही माप कठिन तथा त्रुटिपूर्ण होता है। यह आवश्यक और उपयोगी है कि इस माप की त्रुटि का सकेत दिया जाय। यदि त्रुटि को सही मात्रा के आनुपातिक माना जा सके तो समस्या कुछ सरल हो जाती है।

चतुर्थ, अक सकलन तथा अनुगणन सुविधा हेतु मात्राओ को निकटतम इकाई (nearest integer) मे रखते है। यथा, यदि कोई मात्रा ०.५१ हो तो उसे १ लिखेंगे और ०.४९ हो तो उसे '०' लिखेंगे। इसके कारण प्राविधिक गुणको के परिवर्तन बढ जाएँगे। यदि साख्यिकीय ढग पर दो मानों के अन्तर के महत्त्व (Significance) का परीक्षण किया जाय तो तत्सम्बन्धी निष्कर्ष भी बदल सकते है।

एक बात और। श्री लिओंनटिव आदा-प्रदा तालिकाओ के प्रचारक और

१ देखिए रास्मुसन कृत स्टडीज इन इण्टर-सेक्ट्ररल रिलेशस, पृष्ठ १४५-१४९।

शायद जन्मदाता कहे जा सकते है। उन्होने इसका उपयोग द्वितीय महायुद्ध के समय मित्र राष्ट्रो के सैन्य सगठन सम्बन्धी ऐकिक-आयोजन (Linear Programming) के लिए किया था। ऐसे प्रयत्न की यथार्थता और विश्वसनीयता (Reliability) का अध्ययन करने का कुछ कार्य सेना अधिकारियो की प्रेरणा और योग से श्री ऑस्कर मारगेस्टर्न ने किया था। अध्ययन के फलस्वरूप जो पुस्तक[1] प्रकाशित हुई है उसका साराश यह है कि अधिकाश (most) प्रकाशित आर्थिक-आँकडो मे यथार्थता (accuracy) को खोकर भी बाल की खाल (Precision) तक पहुँचा जाता है और गलती (Inaccuracy) इतनी होती है कि उसको देखते हुए बहुत से कार्यों के लिए किया जाने वाला उन आँकडो का उपयोग महत्त्वहीन हो उठता है। यदि मैं कहूँ कि मेरी आयु मे आधे वर्ष (० ५) का अन्तर हो सकता है और फिर भी मैं अपनी आयु ३५ ४१७३ वर्ष लिखूँ तो कोई भी समझदार व्यक्ति कह सकता है कि अन्तिम तीन दशमलव स्थानो का देना व्यर्थ है। उल्लिखित अध्ययन मे इस बात पर जोर दिया गया है कि स्थिति उससे भी अधिक खराब रहती है। गलती की सीमाएँ, जो १०% या २०% या अधिक अनुमानित की जाती हैं, इतनी अधिक होती है कि आर्थिक सिद्धान्तो को प्रयोग द्वारा कसौटी पर कसने अथवा अर्थनीति को कार्यान्वित करने के लिए हम हिचकने लगेंगे। आय-व्यय तालिकाओ की विश्वसनीयता के अध्ययन से उठे इन मतो का उक्त विश्लेषण के महत्त्व पर ऋणात्मक आक्षेप स्पष्ट है।

1 On the Accuracy of Economic Observation by Osker Morgenstern, 1950

परिशिष्ट

आदा-प्रदा विश्लेषण सम्बन्धी अनुगणन सरलता से समझने के लिए हम मान लेते है कि देश मे दो क्षेत्र—कृषि एव अकृषि—है और इन क्षेत्रो की उत्पत्ति का वितरण निम्नाकित तालिका मे क्षैतिज रूप से दिखाया गया है—

आदा	उत्पत्ति (या प्रदा) वितरण			
श्रोत	कृषि	अकृषि	उपभोक्ता को प्राप्त	कुल
कृषि	$प_{११}$	$प_{१२}$	$य_{१}$	$प_{१}$
अकृषि	$प_{२१}$	$प_{२२}$	$य_{२}$	$प_{२}$

कृषि का कुल उत्पादन $प_{१}$ है जिसमे से $प_{११}$ कृषि मे ही खप जाता है, $प_{१२}$ अकृषि मे तथा $य_{१}$ उपभोक्ता के पास पहुँचता है। उपभोक्ता को जाने वाले अश $य_{१}$ तथा $य_{२}$ है और इनका योग देश की कुल आय (य) कही जाएगी। इसीलिए इन्हे $प_{१३}$ तथा $प_{२३}$ न लिखकर $य_{१}$ एव $य_{२}$ लिखा जाता है। टेक्निकल शब्दो मे $प_{१३}$ (यहाँ $य_{१}$) को कृषि का "अन्तिम वस्तु-बिल" (Final Bill of goods) कहते है अर्थात् कृषि उत्पादको को इतना तो उपभोक्ताओ को देना ही पडता है।

यदि $प_{११}$ तथा $प_{२१}$ को हम $प_{१}$ से भाग देकर भाज्यफल $ल_{११}$ तथा $ल_{१२}$ अनुगणित कर ले तो हम कह सकते है कि कृषि-उत्पत्ति की प्रत्येक इकाई हेतु आनुपातिक 'आदा' $ल_{११}$ तथा $ल_{२१}$ है। उपर्युक्त तालिका को इस नए रूप मे निम्नाकित प्रकार लिख सकते हैं—

आदा श्रोत	प्रदा	आनुपातिक वितरण		
	कृषि	अकृषि	उपभोक्ता	कुल उत्पत्ति
कृषि	$ल_{११}$	$ल_{१२}$	$य_{१}$	$प_{१}$
अकृषि	$ल_{२१}$	$ल_{२२}$	$य_{२}$	$प_{२}$

हम लिख सकते है कि

$$प_{१} - प_{११} - प_{१२} = य_{१}$$

$$प_{२} - प_{२१} - प_{२२} = य_{२}$$

इन्हें बैलेन्स-समीकरण (Balance Equations) कहते है। अस्तु, अधिकतर कृषि मे ही खपने वाली मात्रा को अनुगणन मे नही लेते है। ऐसी स्थिति मे $प_{१}$ का अर्थ उस कृषि उत्पादन मात्रा से होगा जो अकृषि क्षेत्र एव उपभोक्ता को जाती है। तब हम लिख सकते हैं—

$$प_{१} - प_{१२} = य_{१}$$

$$प_{२} - प_{२१} = य_{२}$$

इसी प्रकार स्वरूप-समीकरण (Structural Equations) की कल्पना यह है कि

प्रत्येक उद्योग मे काम लाई गई वस्तु उस उद्योग के उत्पादन के अनुपात मे दिखलाई जाए। यथा, हम कह सकते है कि—

$$प_{११} = ल_{११} \quad प_{१}$$
$$प_{२१} = ल_{२१} \quad प_{१}$$
$$प_{१२} = ल_{१२} \quad प_{२}$$
$$प_{२२} = ल_{२२} \quad प_{२}$$

$ल_{११}$ तथा $ल_{२१}$, $प_{१}$ वस्तु उद्योग के प्राविधिक गुणक (Technical coefficients) कहलाते हैं। ऐसे ही $ल_{१२}$ तथा $ल_{२२}$ को समझिये। ये एक प्रकार से आनुपातिक गुणक है।

आनुपातिक गुणकों के रूप मे इन समीकरणो को निम्न प्रकार से लिख सकते है[१]—

$$१\, प_{१} - ल_{१२} \quad प_{२} = य_{१}$$
$$-ल_{२१}\, प_{१} + १ \quad प_{२} = य_{२}$$

इन समीकरणो के गुणको (Coefficients) को पजीकृत तालिका रूप मे निम्न प्रकार लिखते है—

$$\begin{vmatrix} १, & -ल_{१२} \\ -ल_{२१}, & १ \end{vmatrix}$$

इसको (२, २) मैट्रिक्स कहते है। प्रथम '२' का तात्पर्य यह है कि क्षैतिज स्तरों (rows) की सख्या २ है। द्वितीय '२' का सकेत यह है कि शीर्ष कालमो (columns) की सख्या २ है।

आदा-प्रदा विश्लेषणकर्त्ता $प_{१}$, $प_{२}$, $य_{१}$ तथा $य_{२}$ के सह-सम्बन्धो को निम्न-रूप मे अनुगणित करते है—

$$प_{१} = स_{११}\, य_{१} + स_{१२}\, य_{२}$$
$$प_{२} = स_{२१}\, य_{१} + स_{२२}\, य_{२}$$

अर्थात् वे निम्नाकित मैट्रिक्स के चारो अशो (Elements) का पता लगाना चाहते है।

$$\begin{vmatrix} स_{११}, & स_{१२} \\ स_{२१}, & स_{२२} \end{vmatrix}$$

पहले दिए हुए ल— मैट्रिक्स से स—मैट्रिक्स को अनुगणित करने के कार्य को मैट्रिक्स-व्यस्तन (Matric Inversion) कहते हैं। मैट्रिक्स उलटने की क्रिया को समझने के लिए यह बताना वाछनीय है कि मैट्रिक्स सम्बन्धी गणित की भाषा मे पूर्वोक्त दोनो

---

१ यदि देश का उत्पादन क्षेत्र 'भ' उद्योगों में बाँटा जाए तो इन समीकरणों का रूप निम्न प्रकार होगा—

$$१\, प_{१} - ल_{१२}\, प_{२} - ल_{१३}\, प_{३} \cdots - ल_{१भ}\, प_{भ} = य_{१}$$
$$-ल_{२१}\, प_{१} + १\, प_{२} - ल_{२३}\, प_{३} \cdots - ल_{२भ}\, प_{भ} = य_{२}$$
$$-ल_{३१}\, प_{१} - ल_{३२}\, प_{२} + १\, प_{३} \cdots - ल_{३भ}\, प_{भ} = य_{३}$$
$$-ल_{भ१}\, प_{१} - ल_{भ२}\, प_{२} \cdots \cdots + १\, प_{भ} = य_{भ}$$

मैट्रिक्सो का गुणा एक तीसरे मैट्रिक्स के रूप मे निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$\begin{vmatrix} १, -ल_{१२} \\ -ल_{२१}, \quad १ \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} स_{११}, स_{१२} \\ स_{२१}, स_{२२} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} १, ० \\ ०, १ \end{vmatrix}$$

स—मैट्रिक्स के प्रत्येक स्तर-अशो (row-elements) को क्रमश ल—मैट्रिक्स के प्रथम कालम-अशो (First column elements) से गुणा करके गुणनफलो के योग को तीसरे मैट्रिक्स के, जिसे इकाई-मैट्रिक्स (Unit Matrix) कहेगे कि प्रथम कालम के प्रथम अश के बराबर रखते है—

$$स_{११}·१ + स_{१२} \quad (-ल_{२१}) = १$$
$$स_{११}(-ल_{१२}) + स_{१२}(१) = ०$$

यह तो हुआ स—मैट्रिक्स के प्रथम स्तर के अशो का गुणा। इसी प्रकार स—मैट्रिक्स के द्वितीय स्तराशो के गुणो के फलस्वरूप हम लिखेगे—

$$स_{२१} \quad (१) + स_{२२}(-ल_{२१}) = ०$$
$$स_{२१} \quad (-ल_{१२}) + स_{२२}(१) = १$$

इसमे प्रत्येक गुणनफल योग को क्रमश इकाई-मैट्रिक्स के दूसरे कालम के अशो के रूप मे बराबर रखा जाता है।

स्पष्ट है कि स—मैट्रिक्स मे जितने कालम है, ल—मैट्रिक्स मे उतने स्तर होगे और स—मैट्रिक्स मे जितने स्तर होगे, ल—मैट्रिक्स मे उतने कालम होगे।

यह भी स्पष्ट है कि ल—मैट्रिक्स मे जितने कालम होगे इकाई-मैट्रिक्स मे उतने स्तर होगे, तथा स—मैट्रिक्स मे जितने स्तर होगे (अर्थात् ल—मैट्रिक्स मे जितने कालम होगे) इकाई-मैट्रिक्स मे उतने कालम होगे। इस प्रकार इकाई-मैट्रिक्स के स्तर एव कालम की सख्याएँ बराबर (और ल—मैट्रिक्स के कालमो की सख्या के बराबर) होगी।

अस्तु। उपर्युक्त चारो समीकरणो को हल करके चारो 'स' का फल ज्ञात किया जा सकता है। आदि-समीकरणो की सख्या दो या तीन होने से उपरोक्त ढग से लिखकर भी समीकरण हल किए जा सकते हैं परन्तु अधिक समीकरण होने पर मशीन की सहायता ली जाती है। ऐसी मशीन को "इलेक्ट्रानिक कम्प्युटर" कहते है। इससे कार्य अति तीव्रता से होता है।

निस्सन्देह कम्प्युटर अर्थात् मशीन द्वारा काम करने के खतरे भी होते है। यदि कही मशीन का कोई पुर्जा ठीक न चला तो सारे अनुगणन गलत हो जाएँगे। और यदि मशीन के पुर्जे के ठीक न चलने का पता अनुगणक को न लगा तो वह गलत नतीजो को सही मानकर अपने निष्कर्ष निकालेगा और नीति-निर्णय करेगा। इस खतरे को कम करने के प्रयत्न तो किये जाते है, फिर भी मशीन मशीन ही है।

मशीन द्वारा दिये गए धोखे को हम भाँप सके या जान सके तत्हेतु मनुष्य को अधिक विशेषज्ञ बनना पडेगा। यह कहना गलत होगा कि जटिल यन्त्रो के कारण मनुष्य की मानसिक प्रशिक्षण सरल हो जाती है और केवल बटन दबाने से सब कार्य एक प्रकार होते रहेगे।

अस्तु, 'स' का ज्ञान हो जाने से हम यह जान जाते है कि 'य' के रूप मे

विभिन्न प किस प्रकार अनुगणित होते है—

$$प_1 = स_{11} य_1 + स_{12} य_2$$
$$प_2 = स_{21} य_1 + स_{22} य_2$$

यदि $य_1$ मे १०% की वृद्धि तथा $य_2$ मे ५% की वृद्धि करनी है तो हम बता सकते है कि $प_1$ और $प_2$ मे कितनी वृद्धि करनी पडेगी। इस प्रकार राष्ट्र के विभिन्न उपभोग-ध्येय (Consumption targets) जानकर उत्पादन-ध्येय (Production targets) स्थापित करना सरल हो जाएगा।

परन्तु इसका यह अर्थ न निकालना चाहिए कि ऐसे विश्लेषण-आधारित योजना को कार्यान्वित करने पर राष्ट्र की जनता को कष्ट न होगा, मूल्यो की अति-वृद्धि न होगी अथवा वस्तुओ की कमी न पडेगी। यह तो इस पर निर्भर रहेगा कि जनता प्राप्त-आय का वितरण उपभोग पर किस रूप से करती है। हम जनता के भूतपूर्व व्यय-सम्बन्धी अध्ययन भी कर सकते है परन्तु हम यह पक्की तौर पर नही कह सकते कि जनता का उपभोग-वितरण वैसा ही रहेगा जैसा कि विकसित हो रहे देशो (यथा, पोलैड) का अनुभव है। कम क्रय-शक्ति वाले व्यक्ति नवीन क्रय-शक्ति प्राप्त करके उसको व्यय करने का ढग नही समझ पाते। यदि अतिरिक्त क्रय-शक्ति सेवाओ (यथा, मनोरजन, सिनेमा, यात्रा, होटल) के मूल्य के रूप मे न खीच ली जाएगी तो वस्तुओ की माँग बढ जाएगी और मूल्य भी।

अध्याय १३

राष्ट्रीय आय एवं सामाजिक लेखा

पचास वर्ष पूर्व भी राष्ट्रीय आय की परिकल्पना थी। मार्शल और पिगू ने राष्ट्रीय-प्राप्ति (National Dividend) की व्याख्या की थी और उसके आधार पर समाज एव व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओ के फलो तथा सम्बन्धो का विश्लेषण भी किया था। परन्तु सन् १६३० के पश्चात् राष्ट्रीय आय के रूप में उनकी परिकल्पना का नया कल्प हुआ। राष्ट्रव्यापी मन्दी को दूर करने के लिए उसके कारणो को समझने का नया प्रयास आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय आय को मुख्य वर्गों की आय के योग के रूप मे चित्रित किया गया और इन मुख्य वर्गों के कार्यों के कारण ही उत्पादन तथा वृत्ति मे परिवर्तन होना माना गया।

अब तो अर्थशास्त्र का पठन-पाठन राष्ट्रीय आय के पहलू से किया जाता है और अमेरिका, इगलैड तथा अब भारत मे भी वार्षिक सरकारी बजट के समय राष्ट्रीय लेखा-विवरण दिए जाते है।

राष्ट्रीय लेखा का दूसरा व्यावहारिक नाम सामाजिक लेखा है। मुख्य वर्गों के आय-व्यय के परिवर्तनो के आधार पर राष्ट्रीय उत्पादन, वृत्ति, सम्वृद्धि आदि के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकाले जाते है। दो देशो की सम्वृद्धि की तुलना भी उनके राष्ट्रीय लेखाओ के आधार पर करते है।

सापेक्षिक राष्ट्रीय आय-स्तरो का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इससे न केवल अन्त-र्राष्ट्रीय सघो को सापेक्षिक विश्लेषण मे सहायता मिलती है, वरन् सदस्य-देशो के सघ मे क्या हिस्से हो, यह निर्णय करने मे भी मदद मिलती है तथा विभिन्न द्रव्य-प्रणाली वाले देशो की सामूहिक आर्थिक शक्ति का भी मूल्याकन सरल हो उठता है। योरोपीय आर्थिक सहयोग सघ (O.E E C) के अन्तर्गत ऐसी तुलनाओ को करने के उल्लेखनीय प्रयास किये गए है।

राष्ट्रीय आय की परिभाषाएं—समष्टिभावी अर्थशास्त्रीय परिकल्पनाओ मे राष्ट्रीय आय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीय आय के पाँच रूप उल्लेखनीय है—

(१) कुल राष्ट्रीय उत्पादन, (२) वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन, (३) राष्ट्रीय आय, (४) कुल वैयक्तिक आय, (५) व्ययनीय आय।

प्रत्येक का सम्बन्ध एक निर्दिष्ट अवधि से रहता है, जो साधारणतया 'वर्ष' होती है। नीचे हम इस प्रश्न का स्पष्ट उल्लेख सदैव नही करेंगे, परन्तु यह निहित रहेगा।

कुल राष्ट्रीय उत्पादन—कुल राष्ट्रीय उत्पादन बाजार भाव पर अन्तिम वस्तुओ एव सेवाओ का कुल उत्पादन है।

"अन्तिम" शीर्षक विशेषण का सकेत यह है कि हम केवल उन वस्तुओ और सेवाओ का अनुगणन करेगे जो खरीदार द्वारा पुन बेची न जाएँ। खरीदार या तो खरीदी वस्तु का उपभोग करेगा या उत्पादन के लिए उपयोग।

कुल उत्पादन का मूल्याकन बाजार भाव पर किया जाता है।

कुल उत्पादन का अनुगणन दो पहलुओ से किया जा सकता है। प्रथम, सभी उत्पादको द्वारा उत्पादन मे किये योगो को जोडकर कुल उत्पादन ज्ञात किया जा सकता है। द्वितीय, अन्तिम वस्तुओ पर किये व्यय का योग भी कुल उत्पादन को बता सकता है। अलबत्ता, इस योग मे कुछ राशियो का जोड-घटाना करना पडेगा जैसा कि नीचे बताया गया है। हम पहले इस दूसरी विधि पर ही प्रकाश डालेंगे।

व्ययकर्त्ताओ के चार वर्ग है (१) व्यक्ति, (२) फर्म, (३) वास्तविक विदेशी विनियोग तथा (४) राज्य। अधिकतर कुल दो-तिहाई व्यय वैयक्तिक होता है एव वास्तविक विदेशी विनियोग शून्यप्राय होता है। फर्म एव राज्य, प्रत्येक का प्रतिशत व्यय बराबर हो सकता है, तेजी-मन्दी मे फर्म का व्यय क्रमश बढता-घटता रहता है और यह उतार-चढाव काफी होता है। समय के साथ राजकीय व्यय का प्रतिशत अश बढता जाता है।

वैयक्तिक व्यय मे साधारण व्यय के अतिरिक्त निम्नलिखित व्यय भी शामिल किये जाते है—

(क) वैयक्तिक सेवाओ पर व्यय,

(ख) राजकीय सेवाओ (यथा, डाक-तार, रेडियो, जल-विद्युत्) का चुकाया मूल्य,

(ग) निजी आवास-गृहो का निर्णीत किराया।

अधिकतर अनुगणन की कठिनाई के कारण निम्नलिखित मदो का व्ययाकन नही किया जाता है—

(क) गृह-स्वामिनी का कार्य,

(ख) निजी बाग, जो व्यापार हेतु न रखे जाते हो,

(ग) उत्पादक द्वारा निजी उपयोग हेतु रख लिये गए उत्पादित माल,

(घ) निजी मरम्मत का कार्य।

(ड) गैरकानूनी कार्य, यथा, जुआ, चोरी, छिपाकर माल लाना आदि।

फर्म द्वारा किये व्यय के अन्तर्गत सभी नई पूँजीगत वस्तुओ पर किया गया व्यय अनुगणित कर लिया जाता है, चाहे वस्तुएँ पुराने यन्त्रो अथवा घिसे यन्त्रों के प्रतिस्थापनार्थ क्रय की गई हो। यह तो स्पष्ट है कि इसमे कच्चे माल एव अर्ध-निर्मित माल पर किये व्यय शामिल नही किये जाते हैं और न उपभोक्ता की स्थायी वस्तुएँ (यथा, साइकिल, टाइपराइटर, रेडियो) ही।

वास्तविक विदेशी विनियोग के दो भाग किये जा सकते है। प्रथम, सभी प्रकार की वस्तु-निर्यात-आयात का शेष, द्वितीय, सेवा तथा विनियोग के कारण राष्ट्रीय जनता द्वारा विदेशो से अर्जित राशि (आय) का तत्सदृशहेतु विदेशो को देय राशि से आधिक्य। व्यवहार मे अधिकतर केवल (अर्जित और देय) लाभांश और ब्याज का

विचार करते है।

राजकीय व्यय निम्नलिखित मदो से सम्बन्धित होते है—

(अ) वैयक्तिक उत्पादक से की गई खरीदारी।

(ब) राज्य द्वारा जनता की नि शुल्क सेवा। इसका मूल्याकन लागत पर होता है और इसके अन्तर्गत राजकीय शासन-व्यवस्था और दफ्तरो के व्यय आ जाते हैं।

(स) राज्य द्वारा दिये ब्याज, सामाजिक सुरक्षा-सम्बन्धी व्यय, अनुदान, पैन्शन आदि। इस सम्बन्ध मे यह विचारणीय है कि राज्य द्वारा की गई सभी जन-सेवाएँ तुरन्त उपभोग-स्वरूप काम नही आती है। राजकीय अनुसन्धान और गवेषणाएँ तो उत्पादको द्वारा उत्पादन-हेतु काम मे लाई जाती है, तथा डाक-तार, सडक आदि का तो उपभोग एव उत्पादन दोनो कार्यों के लिए उपयोग किया जाता है। यह अवश्य माना जा सकता है कि राजकीय सेवाओ को उपभोग एव उत्पादन-वर्गों मे बाँटना कठिन है।

इसी प्रकार राज्य द्वारा दिये ब्याज को पूर्णतया अनुगणन करना (या न करना) उचित न होगा। यदि हम उसको पूर्णतया नही जोड लेते है तो यह कहा जा सकता है कि युद्ध, मन्दी आदि के कारण लिये ऋण आकस्मिक एव क्षणभगुर विनियोग थे और उनसे अब कोई उत्पादन-लाभ नही होता है। यदि सम्पूर्ण ब्याज को जोडे तो यह आलोचना की जा सकती है कि नद-बाँध, रेल, सडक आदि के कारण लिये गये ऋण अवश्य उत्पादक है और ऐसे ऋणो पर दिये गये ब्याज उत्पादन-सेवा का मूल्य है।

उपर्युक्त कुल राष्ट्रीय उत्पादन के अनुगणन मे फर्म-व्यय के अन्तर्गत घिसे यन्त्र एव पुराने यन्त्रो के प्रतिस्थापन-व्यय को जोड लिया गया है। यह अनुचित है, क्योकि यदि इसके कारण उत्पादन-सामर्थ्य लगभग उतनी ही बनी रहती है तो ऐसा व्यय राष्ट्रीय उत्पादन के अन्तर्गत नही जोडना चाहिए। अत ऐसे [illegible]-भोग व्यय को निकालकर जो निधि बचती है, उसे वास्तविक 'राष्ट्रीय उत्पादन' कहते हैं।

'वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन' एव 'राष्ट्रीय आय' की परिकल्पनाओ मे अन्तर है। राष्ट्रीय आय कुल उत्पादन की लागत मानी जाती है। इस तक पहुँचने के दो मार्ग है। प्रथम, आय-पहलू (Income Approach) की राह से हम सभी उत्पादन के साधको की पाक्षिक अर्जित राशि (earnings during a given period) का योग निकाल ले अर्थात् वेतन, मजदूरी, ब्याज, लगान एव लाभ का योग निकाल ले। द्वितीय, वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन की लागत का अनुगणन कर ले। ऐसा करने के लिये हमको यह विचार करना आवश्यक है कि बाजार मूल्य के रूप मे लागत के कौनसे अश छूट जाते हैं एव कौनसे व्यय अनुचित रूप से रहते है। छूटने वाले मद मे मुख्यतः उत्पादन-हेतु दिये सरकारी अनुदान (Subsidies) है। अत इन्हे जोड देना चाहिए।

इसी प्रकार निम्नलिखित व्यय घटा देने चाहिएँ, क्योकि वे लागत नही है—

(अ) अप्रत्यक्ष व्यापार कर (यथा, बिक्री-कर, चुगी) एव लाइसेंस-फीस आदि अ-कर देय (Nontaxes) ।

(ब) उत्पादक द्वारा दान-स्वरूप दिये माल का मूल्य, क्योकि इनके लिए फर्मो को कुछ भी निधि नही मिलती है ।

(स) साख्यिकीय आधिक्य, जो हमारी अनुगणित राशि का आय-पहलू की राह अनुगणित राष्ट्रीय आय पर है ।

राष्ट्रीय आय को हम राष्ट्र की कुल वैयक्तिक आय नही कह सकते हैं । यदि हम कुल वैयक्तिक आय ही निकालना चाहते हैं तो निम्नलिखित अश जोडने चाहिएँ--

(क) राज्य द्वारा दिया वास्तविक ब्याज, अर्थात् ब्याज लेन-देन का शेष ।

(ख) सरकार द्वारा नि शुल्क हस्तातरित राशि ।

(ग) फर्म द्वारा नि शुल्क दी गई और निम्नलिखित मद से सम्बन्धित राशियाँ निकाल देनी चाहिए—

(क) फर्मों के अविभाजित लाभ,

(ख) फर्मों का लाभ तथा आयकर का शेष देय,

(ग) फर्मों के स्टाक के मूल्य बाजार भाव देखकर घटाए-बढाए जाने चाहिएँ ।

(घ) फर्मों द्वारा सामाजिक सुरक्षा-हेतु दी गई राशि

(ड) शेष देय वेतन तथा मजदूरी व्ययनीय आय निकालने की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कुल वैयक्तिक आय मे से वैयक्तिक रूप से दिए कर, फीस, लाइसेंस-फीस आदि को निकाल देना चाहिए ।

इस व्ययनीय आय से यदि हम वैयक्तिक उपभोग-व्यय घटा दे तो हमको वैयक्तिक बचत का भी ज्ञान हो सकता है ।

राष्ट्रीय आय-सम्बन्धी पाँचो परिकल्पनाओ को हम निम्न तालिका द्वारा भी समझा सकते है—

तालिका न० १

उपभोक्ता-व्यय

	कुल वैयक्तिक विनियोग
	वास्तविक विदेश मे विनियोग
	राजकीय व्यय
	योग=कुल राष्ट्रीय उत्पादन
इसमे घटाओ—	पूँजी का ह्रास
	फल= वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन
घटाओ—	अप्रत्यक्ष व्यापारिक कर तथा अन्य देय
	व्यापारिक दान एव उपहार
	राजकीय उद्योगो से लाभ

	साख्यिकीय अन्तर
और जोडो—	राजकीय सहायता
	फल=राष्ट्रीय आय
घटाओ—	कम्पनी के अवितरित लाभ
	कम्पनी की व्यापारिक करादि-सम्बन्धी देय राशि
	कम्पनी की स्टाक-वृद्धि
	कम्पनी द्वारा सामाजिक सुरक्षा योग
	मजदूरी जो अभी चुकाई नही गई है
जोडा—	राज्य द्वारा दिया वास्तविक ब्याज
	राजकीय दान, उपहार एव अनुदान
	व्यापारिक दान एव उपहार
	फल=वैयक्तिक आय
घटाओ—	वैयक्तिक कर तथा अन्य देय
	फल=व्ययनीय आय

व्ययनीय आय का एक अश उपभोग पर व्यय होता है और शेष को हम "वैयक्तिक बचत" की सज्ञा दे सकते हैं।

उपरोक्त आय आदि की सहायता से हम व्यक्ति, कम्पनी, अन्तर्राष्ट्रीय तथा राज्य की आय-व्यय तालिकाएँ बना सकते है।

तालिका नं० २

	आय	व्यय	बचत
व्यक्ति	व्ययनीय आय	उपभोग व्यय	बचत
कम्पनी	अवितरित लाभ पूँजी-ह्रास स्टाक-वृद्धि देय मजदूरी	कुल वैयक्तिक विनियोग	
अन्तर्राष्ट्रीय	—	वास्तविक विदेश मे विनियोग	शेष
राजकीय	वैयक्तिक करादि कपनी के व्यापारिक करादि अन्य कम्पनी-कर राजकीय उद्योग-लाभ	राजकीय व्यय राजकीय व्यापारिक सहायता राजकीय ब्याज व्यय राजकीय दान एव उपहार	शेष
योग	आय	व्यय	शेष

यदि आय-योग को कुल राष्ट्रीय उत्पादन के बराबर बनाना है तो इसमे साख्यिकीय त्रुटि जोड़ दें और राज्य से व्यक्ति एव कम्पनी को मिले दान एवं उपहार घटा दें। हमने यहाँ यह मान लिया है कि कुल राष्ट्रीय उत्पादन की राह से अनुगणित राष्ट्रीय आय, अर्जित-आय की राह से किये अनुगणन फल से अधिक है।

अत पहली तालिका मे सांख्यिकीय त्रुटि घटाई थी। अस्तु, इसी प्रकार यदि व्यय के योग को कुल राष्ट्रीय उत्पादन के बराबर बनाना है तो राजकीय दान एव उपहार को घटा देना चाहिए क्योंकि वह कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे नहीं गिना जाता है।

राष्ट्रीय आय का निर्धारण—राजकीय-उद्योग-लाभ और राजकीय व्यापारिक सहायता का अन्तर धनात्मक (+) परन्तु अति कम होता है। यदि हम तालिका न० २ में (i) व्यक्ति की केवल बचत दिखाये, (ii) कम्पनी के आय अशो को कम्पनी की बचत स्वरूप समझे, (iii) अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग को कम्पनी विनियोग के साथ जोड ले, तथा (iv) राजकीय आय को कर-आय की सज्ञा दे तो हम कह सकते हैं कि कुल बचत + (कर की आय) = कुल विनियोग + राजकीय व्यय अर्थात्,

कुल बचत = कुल विनियोग + राजकीय घाटा अर्थात्,

बचत = विनियोग + राजकीय घाटा

इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि राष्ट्रीय आय बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय बचत का या तो विनियोग हो जाए या राज्य को ऋण रूप मे मिल जाए। यदि राजकीय ऋण शून्य हो तो समान राष्ट्रीय आय हेतु (For maintenance of national income) यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय बचत, राष्ट्रीय विनियोग के बराबर हो।

यदि बचत से विनियोग अधिक है तो राष्ट्रीय व्यय (अत राष्ट्रीय आय) पहले से अधिक होगी। यदि विनियोग बचत से अधिक है तो राष्ट्रीय आय पहले से कम होगी। यदि हम यह मान ले कि उपभोग-व्यय पिछले पक्ष (वर्ष) की आय से होता है, तो हम कह सकते हैं कि—

वर्तमान बचत = पिछली आय—वर्तमान उपयोग

परन्तु यह सम्भव है कि पडी नकदी (Idle cash) (अथवा बैंक ऋण का लाभ उठाकर कम्पनियाँ वर्तमान बचत से अधिक विनियोग करें, अथवा कम विनियोग करे)। फलस्वरूप बचत वर्तमान आय की अपेक्षा अधिक (या कम) होगी। इसी विचारधारा को यो भी व्यक्त कर सकते हैं कि आयोजित विनियोग (Ex-ante investment) आयोजित बचत से अधिक (या कम) हो सकते हैं।

इस विचार दिशा के अन्तर्गत यह मानते है कि यथार्थ विनियोग (Ex-post or realised investment) अनिवार्यतः यथार्थ बचत (Ex-post saving) के बराबर होगा।

इस प्रकार विनियोग और बचत राष्ट्रीय आय (अत उत्पादन) तथा वृत्ति के घट-बढ की निर्माणक शक्तियाँ प्रतीत होती हैं। यह आवश्यक नही है कि राष्ट्रीय आय स्थिर हो तो राष्ट्र मे अवाछनीय बेकारी न हो। परन्तु यह सत्य है कि पिछले पचास-साठ वर्षों से राष्ट्रीय आय मे युद्ध राजकीय नीतियो, दैवी कारणो तथा तेजी-मन्दी के कारण अवाछनीय रूप से परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनो को स्थायी करने के लिए बचत और विनियोग के पीछे छिपी कारण-शक्तियो की व्यवस्था की गई है और की जा रही है।

राष्ट्रीय आय की सीमाएँ—हम आरम्भ मे राष्ट्रीय आय के महत्त्व की ओर

सकेत कर चुके है। इस सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि कई वर्षों की राष्ट्रीय आयो की तुलना करने से पूर्व यह ध्यान रखना पडता है कि प्रतिवर्ष मूल्य का स्तर एक समान नही रहता है। यदि भारत की राष्ट्रीय आय सन् १९३१-५५ के बीच दुगुनी हो गई तो इसका यह अर्थ कदापि नही है कि यहाँ के निवासी दुगुने पदार्थों का उपभोग कर रहे है। द्वितीय, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जनसख्या मे परिवर्तन होता रहता है। तृतीय, राष्ट्रीय आय की रचना (अर्थात् व्यय का कितना अश वैयक्तिक, कितना कम्पनीगत और कितना सरकारी होता है) बदलती रहती है। ऐसी स्थिति मे यह कहना गलत होगा कि भारत मे अधिक रक्षा-व्यय अधिक समृद्धि का द्योतक है। चतुर्थ, वस्तुओ की किस्मे भी बदलती रहती है। यदि उसी राष्ट्रीय आय पर उत्तम किस्म की वस्तुएँ मिले तो निस्सदेह कहना पडेगा कि समृद्धि वृद्धि हुई।

राष्ट्रीय आय मे त्रुटि—राष्ट्रीय आय के दो पहलू बतलाए गये हैं (१) उत्पादन का योग अर्थात् व्यय का योग, तथा (२) साधको द्वारा अर्जित आय का योग। यह कहा जाता है कि यदि दोनो ढग से अनुगणित राष्ट्रीय आय बराबर हो तो अनुगणन त्रुटिहीन है। परन्तु यह कथन नितान्त सही नही है। यह सम्भव है कि (i) विरोधात्मक अथवा अपूर्ण परिभाषाओ अथवा (ii) समक संकलन की एक ही (परन्तु गलत) ढग के कारण दोनो अनुगणन मे एक सी ही गलती हो जाए।

समक सम्बन्धी त्रुटियाँ—पहले ढंग के अनुगणन हेतु समक क्रेताओ से एकत्र करने चाहिएँ तथा दूसरे ढग के लिए उत्पादको से। क्रेता और उत्पादक विनिमय के दो पहलू है। अत एक मत यह भी है कि यदि क्रेताओ से सगृहीत समको के आधार पर एव उत्पादको से सगृहीत समक आधार पर अनुगणित राष्ट्रीय आय के दोनो फल (Result) बराबर हो तो राष्ट्रीय आय का अनुगणन सही माना जाए।

परन्तु ऐसा बिरला ही होता है कि सभी आवश्यक समक केवल क्रेताओ अथवा उत्पादको से प्राप्त हो जाएँ। अत. दो स्रोतो से प्राप्त आँकडो के कारण त्रुटि की सभावना बढ जाती है। उदाहरणार्थ, उत्पादक कोई यन्त्र क्रय करता है जिसका जीवन दस वर्ष है परन्तु वह चुपचाप सारे मूल्य को वार्षिक व्यय मे डाल देता है। साधको द्वारा किए व्यय के ढग से यन्त्र का पूरा मूल्य अनुगणित हो उठेगा। परन्तु पहले ढग के अन्तर्गत यन्त्र-मूल्य का दशमाश ही अनुगणन मे आयेगा।

यथार्थ स्थिति—इसके अतिरिक्त सम्भव है कि अनुगणक प्रकाशित आँकडो से एक तथ्य निकालते हैं, परन्तु यथार्थ स्थिति कुछ दूसरी ही होती हैं। यथा, कोई मिल किसी उपभोग वस्तु के उत्पादन का एक अश दूसरी मिल को उत्पादन के उपयोगार्थ बेच देती है। इस मामले मे राष्ट्रीय आय का अनुगणक निर्माण-गणना-समको (Census of Manufactures data) के आधार पर यह मान लेता है कि सभी उत्पादन उपभोग कार्य मे लग गया है।

कल्पित मान—कुछ वस्तुओ का उपभोग-अ श और उत्पादन-अश कल्पना के आधार पर निश्चित करते हैं। यथा, कोयले का कितना अ श उत्पादन-हेतु रखा जाए, अथवा धोबी द्वारा धोए कपडो की कितनी सेवा उत्पादन-कार्य के सिर मढी जाए।

घिसावट—इसी प्रकार अनुगणक घिसावट का अश प्रचलित मान्यताओ को ध्यान मे रखकर निर्धारित करते है। निजी मकानो के निवासियो के किराए के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू है। यह भी कल्पना से निश्चित किया जाता है।

अ-विपणनीय पदार्थ—मिलो मे कुछ उत्पादित माल बिना बिके ही गोदाम मे पडा रहता है। खेतो से उत्पन्न फसल का एक अ श किसान स्वय खा जाते है। ऐसे उत्पादन के अनुमान काल्पनिक ही कहे जाएँगे। कृषि-प्रधान देशो मे यह समस्या अत्यधिक उठती है। विकसित देशो मे से ऐसे माल का मूल्याकन औसत लागत की दर से किया जाता है परन्तु कृषिप्रधान अविकसित देशो मे जहाँ अदल-बदल का अब भी काफी रिवाज है तथा जहाँ औसत लागत का ज्ञान नही होता है, वहाँ बाजार मूल्य ही मूल्याकन का आधार बनता है।

समयान्तर—यह भी सम्भव है कि दोनो ढगो के अनुगणन मे प्रयुक्त समको के समय (पक्ष) समान नही है। कोई जुलाई से जून तक के होते है, कोई अप्रैल से मार्च तक के तथा कुछ जनवरी से दिसम्बर तक के। ऐसी स्थिति मे दोनो अनुगणन के निष्कर्षों को घटा-बढाकर बराबर कर देने की चेष्टा अनुचित होगी। सन् १९५३ के पश्चात् इगलैंड मे अब ऐसा नही किया जाता है।

त्रुटि अनुमान—सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रीय आय के विभिन्न अश के निष्कर्षो की त्रुटि का अनुमान लगाने की चेष्टा की जाती है—एक बार कूजनेट्स एव उनके साथियो ने अलग-अलग इन अशो की प्रतिशत त्रुटियाँ निकाली थी। फिर उनमे ५०% की वृद्धि करके सब प्रतिशतो का ज्यामितीय औसत निकाल लिया था।

कतिपय जन-सेवा उद्योगो एव आधारभूत निर्माण-उद्योगो के लिए १५% से कम की त्रुटि, तथा कृषि, खनन, गैस, जल, व्यापार, बैंकिग बीमा एव राज्य मदो मे १५-२५% की त्रुटि निर्धारित की गई थी। जल यातायात, सम्पत्ति, सेवा उद्योगो, गृह-निर्माण तथा मिश्रित पदो की त्रुटियाँ २५% से भी अधिक थी। सब मिलाकर कुल राष्ट्रीय आय की त्रुटि १०% से अधिक नही बतलाई गई थी।

कूजनेट्स के अनुसार साधको की अर्जित आय वाले ढग के अनुगणन मे त्रुटि कम होती है। एक अन्य अनुगणक, बार्बर्टन, ने दोनो ढंगो को समान त्रुटिमय बताते हुए भी यह कहा था कि उत्पादन (अर्थात् क्रय) वाला ढंग सत्य के अधिक समीप प्रतीत होता है।

यथार्थता, जैसा कि इगलैंड वाले समझते है, राष्ट्रीय आय की त्रुटि का अनुगणन असभव है। कम से कम अनुगणित त्रुटि उस प्रकार की नही हो सकती है जैसी कि दैव निदर्शन (Random Sampling) के अन्तर्गत हम अनुगणित करते है। त्रुटियो का केवल मोटे ढग पर अनुमान लगाया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय और अविकसित देश—राष्ट्रीय आय की कल्पना से यह तो ज्ञात हो ही सकता है कि आयोजन कार्य के फलस्वरूप राष्ट्रीय कल्याण मे कालान्तर कितना परिवर्तन हुआ है। अविकसित देशो मे राष्ट्रीय आय अनुगणन का यह लाभ भी तभी व्यवहारिक है जब देश की अर्थ-व्यवस्था विनिमय-व्यापी (Exchange Oriented) हो। यदि देश मे काफी उत्पादन की खपत आत्म-निर्भरता एव अदल-

बदल के आधार पर होती है तो राष्ट्रीय आय के लिए ऐसे उत्पादन का किसी मूल्य पर मूल्याकन करना पडेगा। परन्तु यह मूल्य क्या हो, यह विवादास्पद होगा और इसकी गडबडी राष्ट्रीय आय के मान के महत्त्व को खत्म कर देगी। उदाहरणार्थ, भारत मे आधी से अधिक राष्ट्रीय आय कृषि-क्षेत्र मे पैदा और खत्म होती है और राष्ट्रीय आय समिति ज्यो-त्यो इस अश का मूल्याकन करती है। फलत यह कहना कहाँ तक उचित होगा कि निम्नलिखित प्रति व्यक्ति (वार्षिक आय) के आँकडे जनकल्याण-परिवर्तन के द्योतक है—

वर्ष	१९४८-४९	१९५०-५१	१९५२-५३	१९५४-५५
प्रति व्यक्ति आय (रुपए मे)	२४७	३९५	२९६	२५४

अतएव अर्थशास्त्र एव साख्यिकीय विशेषज्ञो को सतर्क रहना चाहिए। उनका कर्तव्य है कि वे सरकार को राष्ट्रीय अनुगणन के झझट बहुत अधिक फैलाने के लिए तेजी से बाध्य न करे। उन्हे इस भ्रामक विश्वास के फेर मे न पड जाना चाहिए कि यदि साख्यिकीय प्रभाव सृजित कर दिए जाएँगे तभी आर्थिक समृद्धि होगी।

यह भी ज्ञातव्य है कि अविकसित देशो की एक मुख्य समस्या यह होती है कि कहाँ कौनसा उद्योग स्थापित तथा विकसित करना व्यवाहारिक तथा लाभदायक है तथा इसे कैसे कार्य रूप दिया जाए। अविकसित देशो के उद्धार की समस्या केवल बाँध, बिजली, लोहा एव इस्पात तैयार करना नही है। उद्योगो के चुनाव तथा स्थानीयकरण के सम्बन्ध मे राष्ट्रीय आय एव सामाजिक लेखा से कोई सहायता नही मिलती है।

तब भी यह निर्विवाद है कि अविकसित देशो के आयोजन कार्य मे बाँध, बिजली, लोहा-इस्पात, यातायात, सवाद परिवहन, शिक्षा, जन-स्वास्थ्य आदि ऐसे अनेक मद है जिनके लिए विनियोग करने को वैयक्तिक साहसोद्यमी तैयार नही होते अथवा सामर्थ्य नही रखते है। अत आयोजन के अन्तर्गत राजकीय विनियोग अधिक होता है। भारत मे भी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह आशा की जाती है कि यदि सरकार ६८ अरब रुपए लगाएगी तो वैयक्तिक साहसोद्यमी ३२ अरब रुपए का विनियोग करेगे। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय आय के मुख्य वर्गों का महत्त्व बढ जाता है। उनकी सहायता से यह ज्ञात हो सकता है कि सरकारी विनियोगो की सापेक्षिक क्षमता कैसी है, राष्ट्रीय आय के राजकीय अश से सरकारी विनियोग मे कितनी सहायता मिलती है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आय एव सामाजिक लेखा के कारण अविकसित देश अन्य किसी भी देश की भाँति निम्नलिखित लाभ उठा सकते हैं—

(अ) यह ज्ञात हो जाता है कि राष्ट्रीय आय के मुख्य स्रोत एव रचना का प्रकार क्या है ? मुख्य आर्थिक क्रियाओ और साधको का पता चल जाता है। फलत. ऐसे प्रश्नो का निर्णय किया जा सकता है कि क्या अनुपस्थित मालिक और बडे जोतदार ही अधिक राष्ट्रीय आय हडप जाते हैं। इसी प्रकार यह निर्णय किया जा सकता है कि कितना अश विदेशो को जाता है अथवा राष्ट्रीय विकास मे विदेशी योग का क्या महत्त्व है।

(ब) यदि राष्ट्रीय आय और जनसख्या की काल-प्रगति (Rate of Growth over Time) ज्ञात है तो यह निर्णय करना सरल होगा कि जनसख्या-नियन्त्रण-कार्य आवश्यक है अथवा केवल राष्ट्रीय आय-वृद्धि सम्बन्धी प्रयत्न पर्याप्त है। इस सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि अविकसित देशो की अर्थ-व्यवस्था विकसित देशो की अपेक्षा कम जटिल है और कम से कम उपरोक्त पहला ('अ') लाभ अन्य प्रकार से भी प्राप्त हो सकता है, यथा, जनगणना द्वारा पेशो का ज्ञान करना ।

अस्तु, विकसित देशो की प्रमुख समस्या प्रति व्यक्ति साहसोद्यम भावना एव पूँजीगत वस्तुओ की वृद्धि करना है। किसी हद तक यह कार्य बिना राष्ट्रीय आय (और राष्ट्रीय सम्पत्ति) की समस्या उठाये ही पूरा किया जा सकता है।

अगले अध्याय मे हमने सैद्धान्तिक राष्ट्रीय आय-विश्लेषण की रीति पर प्रकाश डाला है। राष्ट्रीय आय एव सामाजिक लेखा अध्ययन से राष्ट्रीय आय-विश्लेषण को बल मिलता है।

अध्याय १४

सैद्धान्तिक राष्ट्रीय आय-विश्लेषण

वास्तविक राष्ट्रीय आय "किसी समय" कितनी होगी, इसके अर्थशास्त्रीय सैद्धान्तिक पहलू ज्ञानवर्धक तथा महत्त्वपूर्ण है। "किसी समय" का महत्त्व याद रहे. स्थिति क्षणिक—अत स्थैतिक—है, प्रवैगिक नही। अत निम्न शक्तियाँ समान (Constant) है, ऐसा माना जा सकता है—

(१) उत्पादन-सामर्थ्य, (२) प्रौद्योगिक विधि (Technology),
(३) प्रचलित रिवाज, (४) अपेक्षाएँ (Expectations)।

वास्तविक राष्ट्रीय आय निम्नलिखित शक्तियो द्वारा निर्धारित होती है—

(१) वस्तु-पूर्ति, (२) वस्तु-माँग, (३) द्रव्य-पूर्ति, और (४) द्रव्य-माँग।

वस्तु-पूर्ति उपभोगार्थ पूर्ति एव बचत के बराबर है और वस्तु-माँग उपयोग-माँग एव विनियोग-माँग के बराबर है। उपभोग एव बचत पर राष्ट्रीय आय का प्रभाव पडता है परन्तु विनियोग-माँग पर ब्याज-दर का प्रभाव पडता है। इस प्रकार निम्न छ शक्तियाँ राष्ट्रीय आय की प्रभावक कही जा सकती है—

(१) उपभोग, (२) बचत, (३) विनियोग-माँग, (४) द्रव्य-पूर्ति, (५) द्रव्य-माँग और (६) ब्याज-दर।

किसी भी राष्ट्र की जनता अपनी आय को उपभोग एव बचत मे बाँटती है। यह निर्णय राष्ट्र मे आय-वितरण के स्वरूप, उपभोग एव बचत के प्रति जनमत, भावी मूल्य एव आय के प्रति अपेक्षाओ आदि पर निर्भर होता है। 'अल्पकाल' मे यह शक्तियाँ स्थायी मानी जा सकती है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आय-वृद्धि अशत "बचत" के अन्तर्गत जायगी और अशत उपभोग मे।

इसी प्रकार विनियोग-माँग वैयक्तिक-विनियोग एव राजकीय उत्पादन-माँग का योग होता है। राजकीय उत्पादन-माँग को अल्पकाल मे स्थायी मानना अत्युक्ति न होगा। अतः वैयक्तिक विनियोग का महत्त्व बढ जाता है। स्वाभाविक है कि यह विनियोग "लाभ की अपेक्षा" एव "ब्याज-दर" पर निर्भर है। अल्पकाल मे "लाभ-अपेक्षा" को स्थायी मानकर हम कह सकते है कि वैयक्तिक विनियोग (अत विनियोग) ब्याज-दर पर निर्भर है। यदि ब्याज-दर घटेगा तो विनियोग बढेगा : ब्याज-दर बढेगा तो विनियोग कम हो जाएगा।

ब्याज-दर के व्यवहार को समझने के लिए द्रव्य-पूर्ति एव द्रव्य-माँग की ओर ध्यान देना पडेगा। द्रव्य-पूर्ति का अर्थ है निर्गमित सिक्के के रूप मे द्रव्य, पत्र-मुद्रा एव चैक द्वारा देय जमा। द्रव्य-पूर्ति का निर्णय राज्य एव बैंक द्वारा लिया जाता है।

द्रव्य-माँग प्रचलित रिवाज, आय-व्यय का पक्ष और बारबारता (Fre-

quency), 'भावी आय' एव 'मूल्य सम्बन्धी अपेक्षा' आदि पर निर्भर रहती है। अल्पकाल मे इन्हे स्थायी माना जा सकता है और हम कह सकते है कि द्रव्य-माँग राष्ट्र की आय पर निर्भर होती है। आय-वृद्धि के साथ द्रव्य-माँग भी बढती है, परन्तु ब्याज-दर अधिक हो तो द्रव्य-माँग पर ऋणात्मक प्रभाव पडता है।

ऐसा कहा जाता है कि राष्ट्रीय आय ऐसे स्तर पर निर्धारित होगी कि वस्तु-पूर्ति एव वस्तु-माँग बराबर हो तथा द्रव्य-पूर्ति एव द्रव्य-माँग बराबर हो—

वस्तु-पूर्ति = वस्तु-माँग

∵ उपभोग + बचत = उपभोग + विनियोग

∴ बचत = विनियोग

अन्य शब्दो मे, यदि राष्ट्रीय आय ऐसी है कि बचत एव विनियोग बराबर है तो राष्ट्रीय आय नही बदलेगी। यदि तत्स्तरीय मात्रा से राष्ट्रीय आय अधिक है तो बचत-पूर्ति विनियोग-माँग से अधिक होगी उत्पादन का एक अश नही बिकेगा और उत्पादक उत्पादन घटा देगे। सन्तुलन हेतु ब्याज-दर को गिरना पडेगा। यदि तत्स्तरीय मात्रा से राष्ट्रीय आय कम है तो उत्पादन बढाया जाएगा और ब्याज-दर बढेगा। अत राष्ट्रीय आय (तथा ब्याज-दर) इस स्तर पर होगी कि वस्तु-पूर्ति एव वस्तु-माँग बराबर हो। राष्ट्रीय आय अधिक होगी तो अल्पकाल मे वस्तु-पूर्ति और माँग की बराबरी की दृष्टि से ब्याज-दर कम होगी अर्थात् सन्तुलन सम्बन्धित आय—ब्याज-दर रेखा बायी ओर से दाहिनी ओर गिरती हुई होगी। जैसे माँग-रेखा खीची जाती है।

परन्तु द्रव्य-पूर्ति एव द्रव्य-माँग भी बराबर होनी चाहिए। यदि द्रव्य-पूर्ति अधिक है तो राष्ट्रीय जनता उसके पूर्ण-उद्योग (या विनियोग) हेतु ब्याज-दर घटाएगी; फलस्वरूप विनियोग-माँग और राष्ट्रीय आय-स्तर ऊपर उठेगा। यदि द्रव्य-माँग द्रव्य-पूर्ति से अधिक हुई तो विपरीत फल प्राप्त होगे। अल्पकाल मे द्रव्य-पूर्ति स्थायी होने से आय-वृद्धि होने पर द्रव्य-माँग बढेगी और इसलिए द्रव्य की ब्याज-दर बढेगी। अत द्रव्य-बाजार की दृष्टि से आय बढने पर द्रव्य-माँग (अत ब्याज-दर) बढती है। आय—ब्याज-दर रेखा बाँई ओर से दाहिनी ओर उठती हुई होगी जैसी पूर्ति-रेखा खीची जाती है।

अस्तु, हम कह सकते है कि राष्ट्रीय आय का स्थायी स्तर ऐसा होगा कि वस्तु-पूर्ति एव वस्तु-माँग बराबर हों तथा द्रव्य-पूर्ति एव द्रव्य-माँग भी। दोनो आय-ब्याज-दर रेखाओं के कटन-बिन्दु पर ही ऐसा होगा और वही बिन्दु स्थिरता की दृष्टि से ब्याज-दर एव आय-निर्धारिक बिन्दु होगा।

परन्तु राष्ट्रीय आय निर्धारक-शक्तियो पर स्वय राष्ट्रीय आय का भी प्रभाव पडता है। जिन छः शक्तियो का हम उल्लेख कर चुके है वे आपस मे भी एक दूसरे
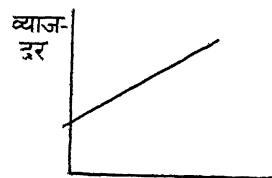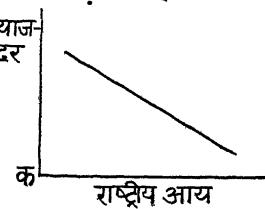
पर निर्भर होती है। तब क्या उपरोक्त विश्लेषण मे वृत्तात्मक विरोध (vicious circle) निहित है ? एक मत यह है कि इन शक्तियो की पारस्परिक निर्भरता बहुत सी गोलियो की पारस्परिक निर्भरता के समान है जो किसी प्याले मे रख दी गई है। किसी भी गोली को हटाने से अन्य गोलियो की स्थिति पर असर पडता है। दूसरा मत यह है कि ऐसा होते हुए भी हम शक्तियो के स्थायी-माप का उसी प्रकार पता लगा सकते है जैसे हम निम्नाकित समीकरण से "य" एव "ल" के मान को जान लेते है—

३ य + २ ल = ७

८ य — ल = ६

हम यह मान ले तब भी इतना ज्ञातव्य है कि उपरोक्त समीकरणो मे ७ एव ६ ऐसी बाह्य-निर्धारित स्थायी शक्तियाँ है जिनका हमको ज्ञान है तथा जिनका माप हमको मालूम है। अर्थशास्त्र मे राष्ट्रीय आय निर्णायक शक्तियो मे से कौनसी बाह्य निर्धारित शक्तियाँ है, एव उनके माप का पूर्ण ज्ञान क्या है, ये विवादजनक विषय है।

हम कह सकते है कि अल्पकाल मे यन्त्र-पूर्ति स्थिर रहती है—अत आय-वृद्धि होने पर वस्तु-उत्पादन वृद्धि हेतु अधिक श्रम का उपयोग करना पडेगा। यदि इस अधिक श्रम की पूर्ति न हुई तो देश मे मुद्रा-स्फीति की स्थिति उठ खडी होगी।

उपरोक्त विश्लेषण करते समय हमने प्रौद्योगिक विधियाँ एव उत्पादन सामर्थ्य के अतिरिक्त निम्नलिखित शक्तियो को स्थिर मान लिया था—

(१) द्रव्य-पूर्ति

(२) द्रव्य-माँग को प्रभावित करने वाली 'अपेक्षाएँ', 'सामाजिक रिवाज' एव 'व्यवसायिक रीति' आदि शक्तियाँ

(३) उपभोग और बचत को प्रभावित करने वाली सामाजिक रुचि, आय, अपेक्षाएँ आदि

(४) नए विनियोग से होने वाले लाभ की अपेक्षा (expectation)।

द्रव्य-पूर्ति

यदि द्रव्य-पूर्ति मे वृद्धि हो जाए तो द्रव्य-पहलू से ब्याज-दर घटेगी ताकि द्रव्य-पूर्ति एव द्रव्य-माँग पुन बराबर हो। आय वही रहेगी और ब्याज-दर घटेगी। अत आय—ब्याज-दर रेखा ऊपर से नीचे की ओर स्थानान्तरित हो उठेगी। चित्र मे न० १ के स्थान पर रेखा नं० २ खीचना पडेगा।

द्रव्य-पूर्ति मे वृद्धि होने से एक सीमा तक उत्पादन, अत राष्ट्रीय आय एव वृत्ति (Employment) मे भी वृद्धि होगी। इस बात का भी प्रभाव रेखा न० २ के निर्धारण पर पडेगा। यह बात इस प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि वस्तु-पहलू से गिरती हुई आय, ब्याज-दर रेखा न० २ को दाहिनी ओर 'ब' बिन्दु पर काटेगी। राष्ट्रीय आय कय से बढकर कय' हो जाएगी।

द्रव्य-पूर्ति वृद्धि के साथ यदि ब्याज-दर नही गिरी, अथवा ब्याज-दर गिरी परन्तु
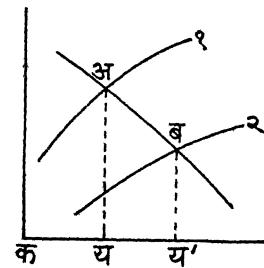
वस्तु-पूर्ति की वृद्धि उपभोग-वृद्धि के अनुरूप न हुई, तो मुद्रा-स्फीति की दशा आ जाएगी। इस प्रकार यदि द्रव्य-पूर्ति घटा दी गई तो विपरीत स्थिति (मदी या बेकारी) का पारम्भ हो सकता है।

द्रव्य-पूर्ति मे उपयुक्त परिवर्तन करके आय को स्थायी भी रखा जा सकता है।

द्रव्य-माँग

द्रव्य-माँग पर राष्ट्रीय आय, ब्याज-दर, जनता की सचय-प्रवृत्ति, मजदूरी चुकाने की वारवारता आदि का प्रभाव पडता है परन्तु भविष्य सम्बन्धी अपेक्षाओ का प्रभाव अधिक पडता है। यदि भविष्य मे गिरते मूल्यो और कम लाभ की आशका लोगो के मन मे घर कर गई तो हिस्सेदार एव ऋण-पत्रो के स्वामी इन्हे बेचने (अर्थात् द्रव्य खरीदने) के लिए दौड पडेगे, ऋणदाता ऋणियो की भावी गिरती ऋण-परिशोध-शक्ति की आशकावश अपने ऋण वापस माँगेगे (अर्थात् द्रव्य वापस चाहेंगे) नए ऋण देने की अपेक्षा द्रव्य पास मे रखना श्रेयस्कर समझा जाएगा। अत. अपेक्षाएँ ह्रासोन्मुख हो तो द्रव्य की माँग बढेगी। अपेक्षाएँ-उन्मुख हो तो विपरीत स्थिति होगी।

बढी द्रव्य-माँग का अर्थ है, माँग-पूर्ति मे विषमता, जिसको दूर करने के लिये या तो ब्याज-दर बढाई जाए या राष्ट्रीय आय घटाई जाए। अधिक द्रव्य-प्राप्ति हेतु जनता निम्नाकित चार कार्य कर सकती है—

(१) खरीदारी कम की जाए, (३) ऋण लिया जाए,
(२) बिक्री अधिक की जाए, (४) ऋण कम दिया जाए।

प्रथम दो उपायो का यह फल होगा कि राष्ट्रीय आय घटेगी और अन्तिम दो के कारण ब्याज-दर बढेगी। इस प्रकार अपेक्षाएँ ह्रासोन्मुखी होने का राष्ट्रीय आय पर ऋणात्मक प्रभाव पडता है।

उपभोग एव बचत मनोवृत्ति

जनता की उपभोग-पदार्थ सम्बन्धी माँग उसके पास की उपलब्ध वस्तुओ की मात्रा और दशा पर निर्भर होती है। नवीन वस्तुओ के कारण भी उपभोग-व्यय बढ जाता है। इसी प्रकार तेजी, बेकारी एव उन्नति की अपेक्षाएँ, उपभोग-व्यय में वृद्धि का कारण बन जाती है। मदी, बेकारी आदि की आशका हमको खरीदारी टालने और बचत अधिक करने के लिए प्रेरित करती है।

यदि जनता खरीदारी अधिक—अत बचत कम—करती है तो बचत विनियोग समता हेतु ब्याज-दर अधिक करनी पडेगी। फलत उसी राष्ट्रीय आय पर ब्याज-दर अधिक होगी। वस्तु पहलू से आय-ब्याज-दर रेखा ऊपर उठ जाएगी और स्पष्ट है कि वह द्रव्य-पहलू वाली आय-ब्याज-दर रेखा को "अ" बिन्दु के स्थान पर दाहिनी ओर 'ब" बिन्दु पर काटेगी जिसका अर्थ होगा कि संतुलन मे अब ब्याज-दर एव राष्ट्रीय आय दोनो अधिक होगी। क्योकि पहले की अपेक्षा अब बचत कम होगी, अत बढी राष्ट्रीय आय
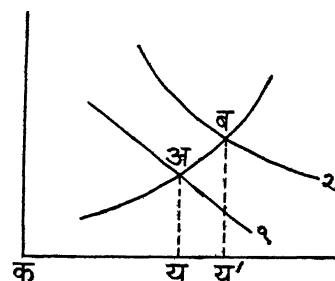
का कारण बढा उपभोग होगा। हम कह सकते है कि उपभोग प्रेरित उक्त राष्ट्रीय आय-वृद्धि मदी-निवारक अथवा महँगी लाने वाली सिद्ध हो सकती है।

लाभ-अपेक्षा

भावी लाभ की अपेक्षा (Expectation) उत्पादक को विनियोगार्थ दिशा मे प्रेरित करती है। सस्ती खरीद और उत्पादन तथा महँगी बिक्री के तीन कारण उल्लेखनीय है—

(१) नवीन प्रौद्योगिक विधि एव यन्त्रो का स्टाक जिनका उपयोग नही किया गया है।

(२) वर्तमान उत्पादन-यन्त्रो की सामर्थ्य किसी सीमा तक [illegible] (Excess capacity) है।

(३) भावी माँग-वृद्धि की अपेक्षित दर (Expected rate)।

पहले एव तीसरे के अधिक होने तथा दूसरे के कम होने पर उत्पादक अधिक विनियोग की चेष्टा करते है। निस्सदेह उपर्युक्त तीनो शक्तियो पर निम्नलिखित सम्बन्धित अपेक्षाएं (Expectations) अपना प्रभाव डालती है —

(अ) जनसख्या वृद्धि
(ब) उत्पादकता वृद्धि
(स) आय-वितरण
(द) राजकीय नीति
(इ) जन-व्यय का स्वरूप
(फ) आर्थिक-चक्र की दशा

अर्थशास्त्रियो ने अपेक्षाओ को सैद्धातिक विश्लेषण मे उल्लेखनीय स्थान दिया है, परन्तु यह ज्ञातव्य है कि व्यवहार मे उत्पादक एव व्यवसायी की अपेक्षाओ को अथवा उनको प्रभावित करने वाले कारणो को पूर्णरूपेण जानना एव मापना दुष्कर है। उत्पादको की अपेक्षाएँ जन-समूह की मनोवैज्ञानिक वृत्तियो तथा कल्पना द्वारा कम प्रभावित नही होती है।

अस्तु। विनियोग-माँग वृद्धि के कारण बचत-पूर्ति अपेक्षाकृत कम पडेगी और समता हेतु ब्याज दर वढेगी अर्थात् उसी राष्ट्रीय आय पर ब्याज-दर अधिक होगी

फलत वस्तु पहलू से आय-ब्याज-दर रेखा ऊपर उठ जाएगी और पूर्ववत् वह दूसरी आय-ब्याज-दर रेखा को दाहिनी ओर काटेगी जिसका अर्थ होगा कि सतुलन बिन्दु पर राष्ट्रीय आय अधिक होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिक द्रव्य-पूर्ति, अधिक उपभोग एव वृद्धि-उन्मुख लाभ की अपेक्षा राष्ट्रीय आय को वृद्धि की ओर ले जाती है। किसी राष्ट्र को विकास-पथ पर ले जाने के लिए राज्य इन शक्तियो का आह्वान कर सकता है। अधिक द्रव्य-पूर्ति और राजकीय विनियोग-कार्य (यथा, भवन, सडकादि का निर्माण) राष्ट्रीय आय को विनियोग मात्रा से कईगुना बढा सकता है और ये बेकारी-निवारण के महत्त्वपूर्ण साधन हैं।

सम्बन्धित समस्याएँ

निस्सदेह ऐसे कदम उठाने से संबधित कई राजनैतिक, प्रबन्ध सबधी, वैयक्तिक
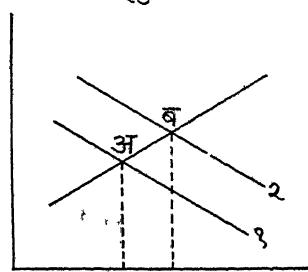
साहसोद्यमी स्पर्धा आदि समस्याएँ है । गलत निर्णय राजकीय कठिनाइयो को बढा सकते है । सरकारी विनियाग को दृष्टि मे रखकर भावी समृद्धि एव अधिक व्यवसाय की अपेक्षा करने वाले उत्पादको की स्वय भी, अधिक विनियोग करने की प्रवृत्ति होगी। इसके विपरीत यदि राजकीय विनियोग को वैयक्तिक क्षेत्र मे अनधिकार अवतरण के रूप मे समझा गया तो वैयक्तिक विनियोग पहले से कम हो सकते है जिसके फल-स्वरूप वैयक्तिक विनियोग कम हो जाने की प्रवृत्ति होगी। ऐसी स्थिति मे कुल राष्ट्रीय (राजकीय + वैयक्तिक) विनियोग की वृद्धि नवीन राजकीय विनियोग से कम होगी और राजकीय विनियोग का प्रभाव घट जाएगा। पश्चिमी अर्थशास्त्रियो के मध्य यह विवाद का मत है कि क्या राजकीय अतिरिक्त विनियोग के कारण राष्ट्रीय आय, विनियोग मात्रा से कम बढेगी अर्थात् क्या राष्ट्रीय आय-वृद्धि और राजकीय विनियोग-वृद्धि का अनुपात एक से कम होगा। आशा-प्रेरित अर्थशास्त्री इस अनुपात को एक से अधिक ठहराते है ।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि उपरोक्त राष्ट्रीय आय निर्धारण अध्ययन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से राष्ट्रव्यापी मापो के आधार पर किया गया है । जैसा हम जानते है अर्थशास्त्र मे ऐसे अध्ययन को समष्टिभावी अर्थशास्त्रीय (Macro-Economic) अध्ययन कहते है । इसके अन्तर्गत विशिष्ट उत्पादन क्षेत्रो, उद्योगो, कारखानो मे उत्पन्न होने वाली कठिनाइयो एव समस्याओ का ध्यान नही रखा जाता है । वैसा ध्यान यथार्थ मे व्यष्टिभावी-अर्थशास्त्रीय (Micro Economic) अध्ययन के क्षेत्र मे उठता है । अर्थ-व्यवस्था की समष्टिभावी-दृष्टिकोण से विश्लेषण करने की प्रवृत्ति पिछले पच्चीस वर्षों से अधिक हुई है । केन्स नामक अग्रेज अर्थ-शास्त्री को इसका श्रेय देना अत्युक्त न होगा । परन्तु यह ज्ञातव्य है कि ऐसे अध्ययन एव इस स्तर पर आयोजन करने के साथ-साथ व्यष्टिभावी-अर्थशास्त्रीय स्थिति की कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण समस्याओ पर विचार करना अनिवार्य है । ऐसी व्यष्टि-भावी-व्याख्या की ओर से मुख मोड लेना राष्ट्रीय हित मे अवाछनीय है ।

मजदूरी एवं राष्ट्रीय आय

अस्तु, राष्ट्रीय आय-वृद्धि हेतु क्या मजदूरी-वृद्धि उचित है अथवा मजदूरी मे कमी करना । मजदूरी मे कमी करने से उत्पादक की लागत घटती है । अत यन्त्रो एव उपभोग पदार्थों की लागत घटती है । उत्पादक की प्रवृत्ति मूल्य घटा कर अधिक माल बेच लेने की ओर हो सकती है । कम से कम उत्पादन-यन्त्रो का मूल्य ह्रासोन्मुख अवश्य होगा अन्यथा श्रम-प्राकर्षक (Labour-intensive) ढग अपनाए जाएँगे । मूल्य-ह्रास का अर्थ यह होगा कि राष्ट्र की क्रय-शक्ति (अत कुल उपभोग आय) बढ जाएगी । वस्तु पहलू से राष्ट्रीय आय बढेगी । परन्तु यह तभी सत्य होगा जब द्राव्यिक आय की कमी का अनुपात मूल्य की कमी के अनुपात से कम हो । यह भी विचारणीय है कि क्या मजदूरी मे कमी करने से जनता के उस वर्ग की क्रय-शक्ति न कम हो जाएगी जिनको अधिक उपभोग वस्तु उपलब्ध होनी चाहिए ? क्या मजदूरी-ह्रास के कारण गरीबो की स्थिति अधिक नही बिगडेगी ? इन प्रश्नो का उत्तर देना सरल नही है । यदि मजदूरी की कमी चतुर्दिश हुई तो सम्भव है कि

वृत्ति-वृद्धि (Employment increase) इतनी न हो कि वास्तविक क्रय-शक्ति बनी रहे एव अधिक उत्पादन हो। इसके अतिरिक्त मजदूरी घटाना कठिन कार्य है। अत मजदूरी घटा करके वृत्ति एव राष्ट्रीय आय-वृद्धि करने की चेष्टा अनुचित है।

मजदूरी वृद्धि करके उत्पादन, वृत्ति एव राष्ट्रीय आय बढाने की चेष्टा को भी इसी भाँति सदेहात्मक महत्त्व वाली सिद्ध किया जा सकता है। मजदूरी वृद्धि का अर्थ होता है लागत-वृद्धि, अत मूल्य-वृद्धि। अतएव यदि मजदूरी-वृद्धि वाले उद्योगो के ग्राहक अधिक (बढे) मूल्य चुकाने की क्षमता और मनोवृत्ति रखने वाले नही हुए तो उत्पादक मजदूरी-वृद्धि करने के पक्ष मे न होगे। अत. पहले मजदूरी उन्ही क्षेत्रो मे बढानी चाहिए जहाँ वृद्धि के कारण अधिक उपभोग हो सके। अविकसित देशो मे कृषि विशेषतया खाद्यान्न कृषि-क्षेत्र मे मजदूरी को बढाया जा सके तो निश्चय ही कृषको को अधिक मूल्य—अतएव अधिक उत्पादन की प्रेरणा मिलेगी।